* प्रतिज्ञा-पत्र *

मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आजसे प्रतिदिन शास्त्र स्वाध्याय करूंगा असमर्थता बीमारी या अन्य किसी अनिवार्य रुकावट के कारण छूट रहेगी।

भवदीयः—

ह० ________________

पता ________________

मु० पो०

जि०

तारण-तरण

* श्रावक-स्वरूप *

रचयिता:-

श्री १०५ पूज्य-

क्षुल्लक जयसेन जी महाराज,

प्रकाशक:-

श्रीमान सेठ मुरलीधर जी, मेहरूलाल जी,

मोतीलाल जी सिरोंज ।

प्रथमवार १०००	वीर सं० २४६६ तारण सं० ४२६	मूल्य- स्वाध्याय

धन्यवाद

इस अपूर्व एवं परम उपयोगी ग्रन्थरत्न को प्रत्येक भाई के पास बिना मूल्य पहुंचाने का श्रेय श्रीमान सेठ मुरलीधर जी, मेंहगूलाल जी, मोतीलाल जी सिरोंज को है। आपने अपने न्यायोपार्जित द्रव्य से इस ग्रन्थ का प्रकाशन कराया है अतः आपको कोटिशः धन्यवाद है। आशा है आप भविष्य में भी इसी प्रकार धार्मिक प्रचार के लिये योग देते रहेंगे।

—मन्त्री गुलाबचन्द्र
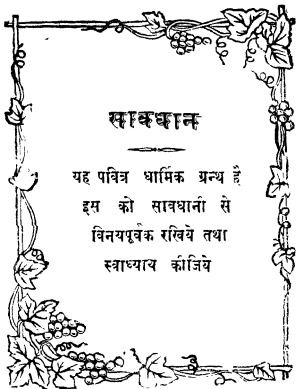
सावधान

यह पवित्र धार्मिक ग्रन्थ है
इस को सावधानी से
विनयपूर्वक रखिये तथा
स्वाध्याय कीजिये

❀ प्रस्तावना ❀

यद्यपि संसार असार है क्योंकि उसके भीतर आत्म-कल्याण का कोई पदार्थ नहीं पाया जाता, सुन्दर स्वादिष्ट भोजन, मनोहर चमकीले भड़कीले वस्त्र, जवाहिरातों से जड़े हुए सोने के मनोरम आभूषण, उन्नत खूबसूरत महल, सुगन्धित सुन्दर फल फूलों से हरे भरे विशाल उद्यान, कमनीय तरुण कामिनी, अनेक प्रकार के रथ, घोड़े, हाथी, मोटर आदि सवारियां, समस्त भोग उपभोग की सामग्री को जुटा देने वाला विशाल धन वैभव इत्यादि पदार्थ संसार में मनोमोहक एवं सुखप्रद प्रतीत होते हैं किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं क्योंकि इन पदार्थों से आत्मा सदा पराधीन, चिन्ताकुल, अतृप्त, असन्तुष्ट बना रहता है, उसको शान्ति प्राप्त करानेके लिये विवेकी पुरुष पर्वत, बन आदि प्रकृतिरम्य निर्जन एकान्त स्थलों

में निःसंग होकर विचरते हैं। भगवान ऋषभदेव आदि तीर्थङ्करों ने, भरत आदि चक्रवर्ती राजाओं ने राज्यवैभव को छोड़कर दिगम्बर-वेश अपनाया उसका रहस्य यही कुछ था।

परन्तु यही संसार जोकि मोही जीव को पराधीनता की बेड़ी में जकड़ कर अनेक विषम यातनाओं का शिकार बनाता है वही संसार सच्चे ज्ञानी पुरुष को आत्म-उत्थान का मार्ग भी दिखाने के साधन उपस्थित करता है। जहां अविवेकी जीव सांसारिक पदार्थों की वाह्य चमक दमक से चौंधिया कर कर्म-बन्धन से स्वयं फंसते हैं, वहीं विवेकी पुरुष इन विषय भोगों के वास्तविक रूप को समझ कर आत्म-उद्धार का, संयम, तप, त्याग का पाठ पढ़ता है। नीलाञ्जना के नृत्य से भगवान ऋषभ देव की राजसभा के अन्य समस्त मनुष्य मोहित हो रहे थे उसी नृत्य से भगवान ऋषभदेव ने अनुपम त्याग का पाठ पढ़ा और वे आत्मा से महात्मा तथा महात्मा से परमात्मा बन गये इस कारण कहना

चाहिये कि संसार सर्वथा असार नहीं किसी दृष्टि से वह सार-पूर्ण भी है।

किन्तु संसार-जलधि का मंथन करके सार निकालने का साधन मानव शरीर में ही प्राप्त है क्योंकि मनुष्य के नेत्र संसार की नरक तुल्य यातनाओं को दीन दरिद्र मनुष्यों, असहाय पशुओं में देखते हैं और स्वर्ग तुल्य वैषयिक सुखों के नज़ारे राजा, महाराजा वैभवशाली धनकुबेरों के यहां देखते हैं, रूपवती, तरुण वेश्याएँ भी यहां दृष्टिगोचर होती हैं और विरक्त, विवेकी साधुओं का समागम भी मनुष्य देह में सुलभता से मिल जाता है, इसी कारण मानवभव एक ऐसा जंकशन स्टेशन है कि यहाँ से चारों गतियों के लिये यहां तक कि पंचम गति मोक्ष के लिये भी ट्रेनें (गाड़ियां) छूटती हैं जो जैसी टिकट लेकर जिस गाड़ी में बैठता है वह वहीं पर जा पहुंचता है। अतः जैसा उत्थान पतन मनुष्य तन से होता है वैसा और कहीं से नहीं होता।

मनुष्य के लिये जो कर्तव्य कार्य हैं उन्हें पुरुषार्थ

कहते हैं, पुरुष का पौरुष तब ही प्रगट होता है जब कि वह पुरुषार्थों को सिद्ध कर दिखावे, पुरुषार्थ चार हैं १-धर्म, २-अर्थ, ३-काम, ४-मोक्ष।

प्रत्येक कार्य का कोई न कोई अन्तिम लक्ष्य हुआ करता है एक विद्यार्थी यदि विद्याभ्यास करता है तो उसका अन्तिम लक्ष्य सबसे ऊंची परीक्षा पास करना है, एक व्यापारी व्यापार करता है उसका लक्ष्य अधिक से अधिक सम्पति एकत्र करना है। इसी प्रकार पुरुष का अन्तिम लक्ष्य, जिससे कि आगे कोई और दूसरा लक्ष्य हो नहीं सकता 'मोक्ष' है पौरुष को पराकाष्ठा मोक्ष प्राप्त करना है किन्तु अनादिकालीन कर्मों की गुलामी दूर करके मुक्त हो जाना कोई सरल काम नहीं है इस के लिये बहुत भारी कठिन, अडिग तपश्चर्या की आवश्यकता है। जब मोह ममता में फंसा हुआ संसारी जीव अपनी गुलामी को खुद अनुभव ही नहीं करता तब उससे छूटने का विचार उसके हृदय में कहां से आ सकता है। कदाचित् तरण तारण सुगुरु के उपदेश से कर्मबन्धन

का पता भी लग जावे तो भी दुखकीचड़ में फंसा, अनेक लेन देन, रिश्ते नाते के गहन जाल में जकड़ा हुआ यह प्राणी कठिन तपस्या की सुविधा नहीं रखता। अतः गृहस्थ अन्तिम लक्ष्य तो अपने सामने रख सकता है किन्तु उसको सिद्ध करने के लिये भगीरथ प्रयत्न नहीं कर सकता उसके लिये तो निराकुल साधु जीवन की आवश्यकता है।

अतः गृहस्थ के लिये तीन पुरुषार्थ शेष रह जाते हैं, धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थों का पालन गृहस्थ को करना चाहिये।

सब से प्रथम स्थान 'धर्म' का है उसका कारण यह है कि धर्म पुरुषार्थ अर्थ और काम की जड़ है। दो व्यापारी एक साथ एक ही व्यापार प्रारम्भ करते हैं उनें में से एक को लाभ होता है दूसरे को घाटा होता है। एक ही माता के उदर से उत्पन्न हुए सगे दो भाइयों में से एक राजसुख भोगता है दूसरा कम्बख्त भीख मांगता फिरता है, एक आदमी पालकी, पीनस, रिक्शा में

बैठकर सदा घर से बाहर निकलता है दूसरा आदमी उसकी रिक्शा को खींचता है यह सब अन्तर क्यों है ? सभी मनुष्य एक सरीखे धनिक या दरिद्र क्यों नहीं हैं ? जब इस प्रश्न पर विचार किया जाता है तब पता चलता है कि इन फर्कों का डालने वाला कर्म है। जिसके शुभ कर्म हैं उसको अनायास या थोड़े परिश्रम से सुख सामग्री मिलती है और जिसके अशुभ कर्म प्रगट होता है उसको कोशिश करने पर भी सुख सामग्री नहीं मिलती संसार उसे 'अभागा बदकिस्मत कम्बख्त' कहता है।

परन्तु यह सौभाग्य और दुर्भाग्य भी तो अपने आप नहीं बन जाते इसके बीज भी तो जीवको खुद बोने पड़ते हैं। जो सुख का बीज बोता है उसको शुभकर्म बंधता है जिससे भविष्य में उसे सुख मिलता है जो बुरे बीज बोता है उसके परिपाक में अशुभ कर्म प्रगट होता है जिससे उसे दुख भोगने पड़ते हैं।

अपने समान दूसरे जीवों को समझ कर उनको

कोई शारीरिक मानसिक कष्ट नहीं देना, मन से भी दूसरे का बुरा न विचारना; झूठ धोखा फरेब चोरी जारी आदि से बचे रहना, परोपकार दान निःस्वार्थ सेवा करना आदि शुभ काम हैं। इन ही शुभ कामों को धर्म कहते हैं। और दूसरों को कष्ट देना, झूठ बोलना, विश्वासघात करना, चोरी, व्यभिचार करना आदि अशुभ कर्म हैं इनको ही पाप कहते हैं। धर्म से सुख मिलता है और पाप से दुःख मिलता है।

इस लिये गृहस्थ को अपना गृहस्थाश्रम सुखपूर्वक चलाने के लिये सुख की जड़ जो धर्म है उसे कभी न भुलाना चाहिये। धर्म करने से ही हमको समस्त सुख सामग्री मिलेगी इस लिये नित्य नियम रूप से धर्म पुरुषार्थ का सब से प्रथम सेवन करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है।

तदनन्तर गृहस्थाश्रम का सुचारु रूप से संचालन करने के लिये 'अर्थ' पुरुषार्थ की आवश्यकता है। अर्थ पुरुषार्थ का मतलब धन-उपार्जन करना है। धन

उपार्जन न्यायपूर्वक होना चाहिये न्याय से कमाया हुआ धन ही मनुष्य के पास ठहरता है। बड़े बड़े डाकू चोर लुटेरे कभी किसी ने धनाढ्य नहीं देखे, अपनी रूप राशि बेचकर व्यभिचार से कमाई करने वाली वेश्याओं की जो दशा होती है उससे कोई अपरिचित नहीं इस लिये पुण्यानुबन्धी धन वह ही हो सकता है जो न्याय पूर्वक कमाया जावे। इसके लिये निम्नलिखित बातों को उपाय में लाना चाहिये।

१–लेन देन में कभी बेईमानी न करे। साफ नीयत से जिसका जो कुछ जितना देना हो दे देवे; न दे सके तो देने की नीयत रक्खे।

२-जो माल जैसा हो उसी रूप में उसे बेचे। असली में नकली मिलाकर न देवे।

३–तोलने, नापने, गिनने, हिसाब करने में सचाई से काम ले; बेईमानी अनीति न करे।

४–अनिति से सूद लेकर किसी को कष्ट न दे। अगर ऋणी मनुष्य के पास देने को कुछ नहीं है तो उस

के घर, बैल, कपड़ा, अनाज आदि जिन्दगी के साधनों को कुर्की नीलामी आदि से छीनने का उद्योग न करें। हमारी जबरदस्ती या अनीति से यदि कोई गरीब भूखा मरा तो हमारा भी भला नहीं हो सकता।

५-अपने व्यापार से छोटी पून्जी वाले छोटे व्यापारियों का गला न घुटे, हमारे एक की कमाई से अन्य गरीबों का सत्यानाश न हो ऐसा ख्याल रखना चाहिये।

इस प्रकार अर्थ पुरुषार्थ पालन करके धन उपार्जन करें। और उस कमाई में से कुछ से अपना व्यापार करें; कुछ से परिवार का पालन पोषण करें, तथा कुछ द्रव्य आपत्ति समय के लिये जमा रक्खें और कुछ अंश धर्मायतनों में, दीन हीन की रक्षा, उपकार, सेवा में दान करें।

तीसरा पुरुषार्थ 'काम' है जिसका अर्थ सुयोग्य सन्तान उत्पन्न करना है। इसके लिये सुयोग्य वर

कन्याओं का तरुण अवस्था पर विवाह होना चाहिये धन, घर आदि के लोभ से छोटी आयु के अथवा अधेड़ या वृद्ध वर के साथ कन्या का विवाह करना, अथवा बहुत छोटी लड़की का विवाह करना अयोग्य है। जिस वृक्ष पर जल्दी फल आते हैं वे पेड़ जल्दी सूख जाते हैं जैसे गेहूं के पेड़। आम आदि के पेड़ कई वर्षों बाद फलते हैं तो वे हरे भरे भी सैकड़ों वर्ष तक रहते हैं। यही दशा मनुष्य की है। यदि वह शीघ्र विवाह-बन्धन में फंस कर (पति, पत्नी) शीघ्र गृहस्थ कर्म में लगेगा तो शीघ्र जीवन समाप्त करेगा। देर से यानी तरुण अवस्था में गृहस्थ बनेगा तो दीर्घायु होगा।

विवाह का उद्देश सुयोग्य, धार्मिक, बलवान सन्तान उत्पन्न करना है इस उद्देश को कभी न भूलना चाहिये क्योंकि धार्मिक परम्परा इसी काम पुरुषार्थ से चलती है, तीर्थङ्कर, नारायण, बलभद्र सरीखे महापुरुष काम पुरुषार्थ से ही उत्पन्न होते हैं। अतः षोडश संस्कारों का प्रचार करके काम पुरुषार्थ को सफल

बनाना चाहिये।

इस कारण मनुष्य को विवेक बुद्धि से काम लेकर आत्म उत्थान का मार्ग अपनाना चाहिये। किन्तु जब तक मार्गदर्शक विवेक ज्ञान का हृदय में उदय न हो पावे तब तक मनुष्य भव भी पशुतन सरीखा निःसार है। विवेक ज्ञान, महात्माओं की वाणी और उनके पवित्र करकमलों से लिखे हुए शास्त्रों के पठन पाठन, सुनने सुनाने से होता है। सारांश यह है कि उपदेश और आध्यात्मिक शास्त्र मनुष्य के अभ्युदय के लिये परम उपयोगी हैं।

परन्तु कहना पड़ता है कि उन ग्रन्थ रत्नों से भी साधारण जनता यथार्थ लाभ नहीं उठा सकती जो कि केवल उच्च शिक्षित लोगों की समझ में आने वाली भाषा में बने हुए हों, प्रचलित सर्व साधारण की भाषा में न हों। इन सब बातों को लक्ष्य में रखकर प्रस्तुत 'श्रावक-स्वरूप' ग्रन्थ आत्मउत्थान का एक सरल साधन है। 'किसी के सन्मुख प्रशंसा करना यद्यपि अच्छी नहीं

समझी जाती किन्तु किसी प्रशंसनीय बात का इसी भय से प्रगट न करना भी उन्नति पथ में कांटे बखेरना है।" तदनुसार मैं निःसंकोच होकर यह क्यों न कहूं कि श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक जयसेन जी महाराज ने मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये सरल सुन्दर भाषा में अनेक ज्ञातव्य सुन्दर उपयोगी बातों का अच्छा संकलन करके, 'श्रावक-स्वरूप' ग्रन्थ के रूप में आत्म-उन्नति का साधन रखकर अनुपम स्व-पर सेवा कार्य किया है।

पूज्य क्षुल्लक जी महाराज दीर्घायु हों तथा इसी प्रकार के और भी अनेक ग्रन्थ-रत्नों का निर्माण कर कल्याणपथ सरल बनाते रहें ऐसी भावना है। श्रावकोंके विषय में सिद्धान्त सम्बन्धी, आचरण सम्बन्धी प्रायः सभी बातें इस ग्रन्थ में 'गागर में सागर' के समान आ गई हैं। आशा है पाठक गण इस ग्रन्थ से अवश्य अनुपम लाभ उठावेंगे।

गुणानुरागी

गुलाबचन्द्र।

❀-इस ग्रन्थ के प्रकाशक-❀

श्रीमान् सेठ मुरलीधर जी मेंहगूलाल जी

मोतीलाल जी सिरोंज वालों का

संक्षिप्त-परिचय

सिरोंज नगर में श्रीमान सेठ मुरलीधर जी मेहगूलाल जी मोतीलाल जी, इन का 'राज्य मान्य' प्रतिष्ठित घर है। श्रीमान् नवाब साहेब टोंक रियासत वालों की भी उपर्युक्त कुटुम्ब पर कृपादृष्टि है, इसी से उक्त सज्जन 'राजमान्य' हैं।

वर्तमान में भाई मेहगूलाल जी तथा उनके लघु भ्राता मोतीलाल जी ये दोनों सज्जन परस्पर में बड़े ही प्रेम-पूर्वक काड़ा, साहूकारी, सराफी, मालगुजारी आदि का व्यापार करते हैं।

तारण समाज के पट्संघों में से आप 'चरणागर' संघ के हैं, तथा अपनी जाति या समाज में अच्छी तरह प्रसिद्धि व ख्याति प्राप्त हैं।

श्री सेमर खेड़ी क्षेत्र के, निकट होने से, पूरी तारण समाज का क्षेत्र पर आने का एक ही रास्ता सिरोंज ही पर से है, अतएव क्षेत्र पर आने जाने वाले सज्जनों का आपके द्वारा हमेशह आदर, सत्कार या आने जाने का (सवारी आदि का) प्रबन्ध सदैव ही वात्सल्यभाव पूर्वक होता है। तथा क्षेत्र सेमरखेड़ी के प्रति आपका असीम प्रेम व देख रेख भी हमेशह उत्तम रीति पूर्वक है। तथा आपकी ओर से यहां बृहत् मेला भी लगाया जा रहा है।

अभी गतवर्ष सं० १९९५ में अपनी क्षुल्लक दीक्षा के पहिले समाज-रत्न ब्रह्मचारी पण्डित जयकुमार जी जब क्षेत्र श्री सेमर खेड़ी जी की यात्रा निमित्त पधारे थे, तब सिरोंज से आप श्रीमान् भाई मेहगूलाल जी मोतीलाल जी तथा आपका समस्त कुटुम्ब भी क्षेत्र पर उपस्थित

हुआ; उन समय पूज्य ब्र० जयकुमार जी जब एक दिन क्षेत्र की धर्मशाला सम्बन्धी छत पर घूम रहे थे तब मन में क्षेत्र की स्थान सम्बन्धी संकीर्णता को विचार कर भाई मेहगूलाल जी मोतीलाल जी आदि को बुलाया और उन से यह बात कही तब उपर्युक्त दोनों भ्राताओं ने तथा आपके कुटुम्बी भाई पन्नालाल जी सुन्दरलाल जी आदि सज्जनों ने बड़े ही भाव-पूर्वक (उमंग सहित) ब्रह्मचारी जयकुमार जी की बात का समर्थन किया, बल्कि भाई मोतीलाल जी ने तो श्रीमान् नवाब साहेब से पांच बीघा जमीन क्षेत्र के नाम से मंजूरी लेकर बड़ी ही तत्परता का कार्य किया। अब यह क्षेत्र सेमरखेड़ी जी भी श्री निसई मल्हारगढ़ के माफिक विशाल बन कर तैयार हो जावे तो यह सब प्रयत्न सफल होंगे तथा समाज के गौरव को कायम रखने वाले 'गगन-चुम्बी' दो क्षेत्र 'विशाल-स्मृति' स्वरूप समाज के 'कीर्ति-स्तंभ' रहेंगे। तारण समाज बहुत जल्दी इस ओर ध्यान देवे, ऐसी प्रार्थना है। इस प्रकार भाई मेहगूलाल जी

मोतीलाल जी तथा आपके समस्त कुटुम्ब का ध्यान धर्म-प्रेम के साथ २ क्षेत्र-प्रेम व समाज-प्रेम की ओर सदैव रहता है जब कभी सामाजिक उन्नति का कोई कार्य आता है तो आप भी आगे तैयार रहते हैं। तथा अपने धर्म वा समाज का अपने हृदय में गौरव रखते हुये श्री गुरु तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज की भक्ति में अपना समय व्यतीत करते हैं।

यह 'तारणतरण श्रावक-स्वरूप' ग्रन्थ भाई मेहगूलाल जी के आग्रह से ही पूज्य १०५ क्षुल्लक जयसेन जी महाराज ने लिखा है। तथा उक्त भाई मेहगूलाल जी मोतीलाल जी की ओर से ही प्रकाशित है

वंश-परिचय

श्रीयुत सेठ श्रीचन्द्र जो के चार पुत्र हुये:—
१ प्रानचन्द जी, २ मुकुन्दराम जी, ३ सेवकराम जी, ४ गोकुलचंद जी। इन में से प्रानचन्द जी की कोई सन्तान नहीं हुई तथा मुकुन्दराम जी के दो पुत्र श्रीमान् सेतुवीर तथा रतनचंद जी हुये। सेवकराम जी के एक

पुत्र शोभाराम जी हुये, तथा गोकलचंद जी के खेमचन्द जी फुन्दीलाल जी तथा चुन्नीलाल जी ऐसे ये तीन पुत्र हुये। इन में से रतनचन्द जी के मुरलीधर जी कालूराम जी शुभकरन जी ऐसे तीन पुत्र हुये तथा शोभाराम जी के कन्हैयालाल जी और खेमचंद जी के सुन्दरलाल जी पन्नालाल जी ऐसे दो पुत्र हुये। इन में से मुरलीधर जी के १ मेहगूलाल जी, २ जीतमल जी, ३ मोतीलाल जी ऐसे तीन पुत्र हुये। जिन में मेहगूलाल जी के १ मथुरालाल जी, २ मनोहरलाल जी, ३ भावनलाल जी उर्फ भूरालाल जी ऐसे तीन पुत्र हैं। तथा मोतीलाल जी के गुलाबचंद जी और केसूलाल जी ऐसे दो पुत्र हैं। कन्हैयालाल जी के दो पुत्र हीरालाल जी गोपीलाल जी हैं। तथा सुन्दरलाल जी के १ दीपचंद जी, २ बाबूलाल जी, ३ राजमल जी ये तीन पुत्र हैं। और पन्नालाल जी के सुपुत्र सरदारमल जी हैं। इस प्रकार यह वंश परिचय है। यह समस्त कुटुम्ब सिरोंज में अपने प्राचीन महल्ल, किले के समान एक मकान में यथा योग्य अपने २

निश्चित स्थान पर रहता है।

यह संक्षिप्त परिचय श्रीमान् मेहगूलाल जी मोतीलाल जी आदि का दिया गया है। श्री गुरु महाराज से प्रार्थना है कि उक्त कुटुम्ब का ध्यान हमेशह इसी प्रकार धर्म-सेवा तथा समाज सेवा की ओर बना रहे वा उक्त कुटुम्ब की श्रीगुरु महाराज की कृपा से पुण्यवृद्धि होती रहे।

तारण समाज के कर कमलों में यह ग्रन्थ श्रीमान् सेठ मुरलीधर जी मेहगूलाल जी मोतीलाल जी की ओर से सादर-सप्रेम भेंट-स्वरूप समर्पित है। आशा है समाज इस प्रेमोपहार को सप्रेम स्वीकार करके उन्हें अनुगृहीत करते हुये इस ग्रन्थ के द्वारा अपना चारित्र सुधार कर नर-जन्म का लाभ सफल करेगी।

इस संक्षिप्त परिचय के लिखने में जो कुछ भी अल्पज्ञता वश गल्ती हो, उसे सज्जनवृन्द क्षमा करते हुये सुधारने की कृपा करें ऐसी प्रार्थना है। विज्ञेष्वलम्॥

भवदीय—

शंकरलाल जैन।

वंश-परिचय नकशा

सेठ श्रीचंद्र जी
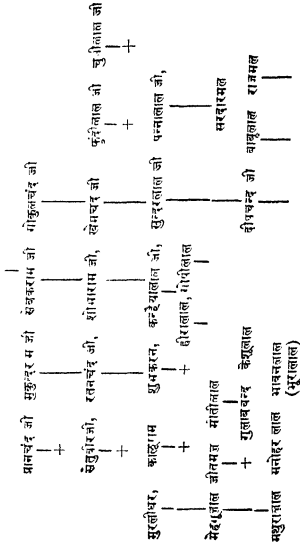
प्रानचंद जी   मुकुन्दराम जी   सेवकराम जी   गोकुलचंद जी

+

सेतुबीरजी,   रतनचंद जी,   शोभाराम जी,   खेमचंद जी   फुंदीलाल जी   चुन्नीलाल जी

+   +   +

मुरलीधर,   कालूराम   शुभकरन,   कन्हैयालाल जी,   सुन्दरलाल जी   पन्नालाल जी,

+   +   हीरालाल, गोपीलाल

मेहरूलाल   जीतमल   मोतीलाल   सरदारमल

+   गुलाबचन्द   केशूलाल   दीपचन्द जी   बाबूलाल   राजमल

मथुरालाल   मनोहर लाल   भावनलाल (भूरालाल)

सेवा में :—

श्रावक-वृन्द !

सप्रेम-समर्पण

सम्यक्त्व-युक्त सदैव जो—

संसार से भयभीत हैं।

रहें तदपि जल-कमलवत—

सब देशव्रत को गत हैं॥

ऐसे हमारे पूज्य श्रावक—

वृन्द, को उपहार में।

दें यह सप्रेम कृति यह—

हर्ष, तुच्छ-स्वीकार में॥

—प्रकाशक

—निवेदन—

ग्यारह प्रतिमा धारी श्रावकों को जितनी बातें पालना चाहिये, क्रमशः प्रत्येक प्रतिमा में सब का वर्णन शास्त्रानुसार किया है, फिर भी अल्पज्ञनावश जो भूल व कमी रह गई हो सो माननीय श्रावकवृन्द सुधार कर पूर्ति कर लें हम अपनी त्रुटियों के लिये क्षमा प्रार्थी हैं। अलमिति०।

—जयसेन।

वन्दे श्री गुरुतारणम् ॥

श्री तारण तरण

श्रावक-स्वरूप

मंगलाचरण

—दोहा—

तारण तरण जिनेन्द्ररवि, तारण तरण मुनींद्र,
श्रीगुरु तारण तरण वर, नमहुं सिद्धि रमणीन्द्र। १।
वीरनाथ वाणी विमल, द्वादशाङ्ग सिद्धान्त,
जातैं मिलै स्वरूप निज, नमहुं विमलकर स्वांत। २।
नमहुं २ निज भावसों, पड़िमा ग्यारह सार,
भव्य वृन्द धारण करहु, खुलै शीघ्र शिवद्वार। ३।
जो यह श्रावक पद धरैं, इह भव में शुभ सार।
स्वर्ग, मोक्ष की सम्पदा, तिनके निकट अपार ॥ ४ ॥
श्रावक पद मैं सुखद यह, श्रावक धर्म स्वरूप।
भूलचूक खमियो सुजन, लीजौ सार स्वरूप ॥ ५ ॥

जगत का परिचय

यह जगत साधारण तौर पर अनादि काल से ऐसा ही चला आ रहा है कभी कोई ऐसा समय नहीं था जब कि जमीन, आकाश, सूर्य, चन्द्र, मनुष्य, पशु, अग्नि, जल, वायु आदि पदार्थों का अभाव रहा हो और न कभी कोई ऐसा ही समय हुआ जब यह सब पदार्थ नये रूप से पैदा हुए हों। जैसे मनुष्य अपने माता पिता से ही उत्पन्न होता है इसी तरह गाय, घोड़ा, हाथी, तोता, कबूतर आदि गर्भज, अंडज पशु, पक्षी भी अपने नर मादा से उत्पन्न हुआ करते हैं यहां तक कि आम अनार आदि वृक्ष भी अपने ही बीज से उत्पन्न होते हैं। यह एक प्राकृतिक अटल नियम है इसके विरुद्ध इन मनुष्य पशु, पक्षी, वृक्ष आदि की उत्पत्ति अपने नियत उपादान

कारणों के बिना कदापि नहीं हो सकती कि "बिना माता पिता के भी मनुष्य उत्पन्न हो जावें, बिना अपने अपने नर मादा के गाय, घोड़ा, सिंह, हाथी आदि जानवर पैदा हो जावें और बिना कबूतरी के अंडा या बिना अंडा के कबूतरी उत्पन्न होजावे तथा बिना बीज के वृक्ष अथवा बिना वृक्ष के बीज हो जावे"।

इस लिये प्राकृतिक नियमानुसार यह बात माननी पड़ेगी कि मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि समस्त चर अचर जीव जन्तु जिन्हें हम आज देख रहे हैं ये सभी जीव जन्तु सन्तान परम्परा से अनादि समय से चले आ रहे हैं। किसी भी समय इनका सर्वथा अभाव (नेस्ति) नहीं था और न किसी खास समय से इनकी उत्पत्ति प्रारंभ हुई है।

इस तरह जब कि ये जीव जन्तु हमेशासे (अनादि से) मौजूद हैं तब इनके रहने के लिये पृथ्वी, पीनेके लिये जल, सांस लेने के लिये हवा, गर्मी पहुंचाने के लिये

अग्नि सूर्य आदि पदार्थ भी हमेशासे मानने पड़ेंगे क्योंकि उनके बिना मनुष्य पशु आदि जीवित कैसे रह सकते हैं। इस लिये पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा, सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ भी हमेशा से (अनादि समय से) मौजूद हैं या होने चाहिये।

'जगत' इन सब पदार्थों के समुदाय का ही नाम है। इस कारण इस सब का सारांश यह है कि चर अचर जीव, जड़ पदार्थों से भरा हुआ यह जगत अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चला जायगा। न कभी सर्वथा इसका नाश (प्रलय) होता है और न कभी इसकी नवीन उत्पत्ति (सृष्टि) ही होती है।

हां, इतना अवश्य है कि इस जमीन में कहीं पर लोहे को, कहीं गंधक की, कहीं कोयलों की खानें हैं इस लिये गंधक आदि विस्फोटक पदार्थों के कारण बड़े २ भयानक भूकम्प हो जाया करते हैं जिनसे बड़े २ नगर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं और कहीं पर समुद्र, नदी का पानी

स्थान छोड़ जाता है जिससे वहां सूखी जमीन निकल आती है। इसी तरह बड़ी भारी जल वर्षा से, बड़े भारी अग्नि कांड से अथवा राजविप्लव से बड़े सुन्दर नगर जमीन में मिल जाते हैं और कहीं पर जंगलों, पहाड़ों में नये नगर बस जाते हैं। जैसा कि अभी कुछ वर्ष पहले भारतवर्ष में जापान में भयानक भूकम्पों से हो चुका है।

परन्तु ऐसी उत्पत्ति और नाश सब जगह, सारे पदार्थों का एक साथ नहीं होता है।

❋ सांसारिक-जीव ❋

जिस तरह यह जगत अनादि काल से चला आ रहा है उसी प्रकार यह जीव भी इसके भीतर हमेशा से (अनादि से) चक्कर लगा रहा है। जैसे जेल में जन्म का कैदी हथकड़ी बेड़ीसे जकड़ा हुआ जेलर की आज्ञानुसार करने, न करने योग्य कामों को करता हुआ अपनी आयु समाप्त करता है उसी तरह इस संसार की जेल में यह जीव रूपी कैदी, कर्म रूपी जेलर की प्रेरणासे, शरीर रूपी बेड़ी से जकड़ा हुआ अनेक तरह के कार्य करता हुआ समय बिता रहा है। कर्म जैसा चक्कर इसको खिलाता है उसी तरह घूमता है। जिस प्रकार तेली अपने बैल की आंखें ढक कर उसे कोल्हू में जोत देता है कोल्हू में जुता हुआ वह बैल दिन भर चलता रहता है, २५–३० मील चल लेता है लेकिन रहता वहां का

वहां है। ऐसी ही दशा संसारी जीव की है। मोहनीय कर्म ने इसके ज्ञानचक्षुओं को विकृत कर दिया है अतः चौरासी लाख योनि का अनन्त समय से चक्कर लगा रहा है किन्तु एक इञ्च भर भी आगे नहीं बढ़ पाया है।

जिस तरह चोर दूसरे की वस्तु अपना कर जेल की हवा खाता है वैसे ही यह जीव शरीर, धन, पुत्र, मित्र आदि पर-पदार्थों को अपना कर अपने बन्धन के लिये राग-द्वेष की जंजीर तयार करता है। अपनी तयार की हुई जंजीर ही इसको जकड़ कर पराधीन बना देती है। रागद्वेष के बीज से मोहनीय कर्म का वृक्ष उगता है उस मोहनीय वृक्ष से क्रोध, मान, लोभ, राग-द्वेष आदि फल जीव को मिलते हैं उन फलों को खाकर यह जीव फिर राग-द्वेष के बीज बोता है फिर मोहनीय कर्म फलता है इस तरह पहली खेती समाप्त होती है तब तक दूसरी नवीन खेती तयार हो जाती है।

मकड़ी जिस तरह मक्खियों को फंसाने के लिये अपने मुख से तन्तु निकाल कर जाल बुनती है किन्तु

दैवयोग से खुद ही उसमें फंस कर अपने प्राण दे बैठती है। यही अवस्था इस संसारी जीव की है यह अपने राग-द्वेष के जाल से अन्य पदार्थों को फंसाना चाहता है किन्तु स्वयं आप फंस जाता है। मोह के कारण इस जीव की बाह्यदृष्टि रहती है अपना विचार इससे दूर बना रहता है।

निम्नलिखित कथा संसारी जीव की बाह्यदृष्टि पर अच्छा प्रकाश डालती है-

"एक गांव से ११ आदमी व्यापार करने के लिये परदेश चले। चलते २ रास्ते में उनको एक छोटी सी नदी मिली। सबने बड़ी सावधानी से उसको पार किया दूसरे किनारे पर पहुंच कर उन्होंने अपने सब साथियों को संभालना शुरू किया कि कहीं कोई आदमी नदी में तो नहीं बह गया। प्रत्येक मनुष्य अपने आपको न गिन कर दूसरे मनुष्यों को गिन लेता था जिससे उनकी संख्या १० दश होती थी वे सब आपस में सोचने लगे कि हम गांव से ११ आदमी चले थे, नदी पार करते ही

हम दश रह गये, हम में से एक आदमी कौन सा कम हो गया है कुछ पता नहीं चलता।

इतने में वहां पर एक घुड़सवार आ पहुंचा उसने उनका किस्सा सुना। उसने सरसरी निगाह से ताड़ लिया कि ये मूर्ख अपने आपको न गिन कर अपना एक आदमी कम समझ रहे हैं। घुड़सवार ने कहा कि तुम सब एक कतार में खड़े हो जाओ मैं तुम्हारे साथी पूरे कर दूंगा। उन्होंने वैसा ही किया।

घुड़सवार ने पहले आदमी में एक हन्टर लगाया और कहा कि 'एक।' दूसरे में दूसरा हन्टर लगाया और कहा कि 'दो।' तीसरे में तीसरा हन्टर लगाया और कहा कि 'तीन।' इस तरह हर एक में एक एक हन्टर लगा कर ग्यारह आदमी पूरे गिन दिये। अपने ११ आदमी पाकर वे मूर्ख बहुत प्रसन्न हुए।"

यही दशा इस रागी जीव की है यह संसार के अन्य पदार्थ धन, पुत्र, मित्र, स्त्री आदि की तो सम्हाल करता है किन्तु अपनी सम्हाल रंचमात्र भी नहीं करता।

इसी कारण यह अपने सच्चिदानन्द स्वभाव को भूल गया है और दीन हीन बना हुआ कष्ट उठा रहा है।

इस बातको निम्नलिखित कथासे समझना चाहिये—

"एक सिंह का बच्चा जंगल में अपने माता पिता (सिंह सिंहिनी) से बिछुड़ कर भेड़ों के एक झुंड में मिल गया। भेड़ों का दूध पी पीकर बच्चे से एक जवान सिंह होगया। भेड़ों के साथ रहते हुए उसने अपने बल पुरुषार्थ को न पहिचाना और भेड़ों की सी ही आदत उसको भी पड़ गई।

एक दिन वह तरुण सिंह भेड़ों के साथ जंगल में गया। वहां जंगल में एक दूसरे सिंह ने बहुत जोर से गर्जना की, उसकी दहाड़ सुन कर वे सब भेड़ें भयभीत होकर इधर उधर भागने लगीं। भेड़ों के झुंड में पला हुआ वह सिंह भी भेड़ों के साथ भागने लगा। यह दृश्य देख कर जंगली सिंह को बहुत आश्चर्य हुआ उसने भेड़ों को छोड़ कर उस भागने वाले सिंह को जा पकड़ा और उसे पकड़ कर तालाब के किनारे पर ले गया।

वहां उसने भेड़ों के सिंह से कहा कि पानी में अपनी और मेरी सूरत देख। उसने वैसा ही किया — जंगली सिंह ने पूछा कि तुझे अपनी सूरत और मेरी सूरत में कुछ अन्तर दीखता है? भेड़ों के सिंह ने कहा— कि नहीं, मेरी तेरी सूरत एक जैसी है। तब जंगली सिंह ने कहा— कि तू भी जोर से दहाड़ मार (गर्जना कर) भेड़ों के सिंह ने जब जोर से गर्जना की, तब भेड़ें फिर भागने लगीं। यह देख कर उसको आश्चर्य हुआ।

तब जंगली सिंह ने उससे कहा— कि मूर्ख! तू भी मुझ जैसा ही पराक्रमी बलवान सिंह है। भेड़ों के साथ रह कर तू अपने आपको भेड़ समझने लगा है। तब उस सिंह ने अपने आपको समझ कर अपनी शक्ति तथा पराक्रम का अनुभव किया और भेड़ों का साथ छोड़ कर सच्चा सिंह बन गया।"

ठीक इसी तरह अनन्त बलधारक यह जीव भी जड़ पदार्थों की संगतिसे उनके साथ मिल गया है पौद्गलिक कार्माण द्रव्य के साथ रहकर इस जीव को अपनी

अनुपम अनन्त शक्ति का जरा भी खयाल नहीं रहा है, जैसे जड़ पदार्थ पर-प्रेरणा से अनेक रूप धारण करता है ऐसे ही यह जीव भी कर्म-प्रेरित होकर अनेक रूप धर रहा है, शरीर, धन, पुत्र, मित्र आदि को अपना रूप मानकर अपना असली स्वरूप भूला हुआ है। जैसे वह सिंह भेड़ों की संगति से अपने आपको भेड़ समझने लगा था उसी तरह यह जीव जड़ शरीर की संगति से अपने आपको शरीर रूप समझने लगा है। शरीर की उत्पत्ति के समय अपनी उत्पत्ति और शरीर के मरण के समय अपना मरण समझ लेता है, किसी रोग आदि से शरीर को कुछ कष्ट हो तो अपने आपको दुखी समझने लगता है, जरा सोना चांदी, विषय भोग उसको मिल जावें तो अपने आपको सुखी मान बैठता है। इस तरह मोह से अन्धा होकर यह संसारी जीव अपने महत्व को भूल गया है।

ऐसी हालत में जिस तरह भेड़ों वाले सिंह को जंगली सिंह मिला था, उसने उस भूले भटके सिंह को

उसके पराक्रम का ज्ञान कराया था उसी तरह सौभाग्य से इस मोही जीव को श्री कुन्दुकुन्दाचार्य, श्री तारण स्वामी सरीखे उपकारी महात्मा का समागम मिलता है। वे आत्मतत्व-वेत्ता महात्मा इस जीव को इसका असली स्वरूप खोल कर दिखाते हैं कि "तू जिस चीज़ को बाहर इधर उधर खोजता फिरता है वह ज्योति तेरे भीतर जगमगा रही है। अपने हृदय के नेत्र खोल कर उसको देख ले।" इस समय यह जीव मोह-निद्रा से अपने ज्ञानचक्षु खोलता है।

तब वे तरणतारण परम दयालु महात्मा इसको भव्य, उपदेश का पात्र समझ कर इसको उस अखण्ड आत्म-ज्योति प्राप्त करने का मार्ग बतलाते हैं कि "जिन बाहरी जड़ पदार्थों में तू सुख शान्ति की खोज कर रहा है उनको एक दम छोड़ दे, विषय भोगों से सर्वथा मुख मोड़ ले, सांसारिक जंजाल से निकल कर एकान्त, निर्जन, शान्त स्थान में आसन लगा कर उस आत्म-ज्योति का निरीक्षण कर, उसके निर्मल स्वभाव का

मनन कर, उसी के स्वरूप का चिन्तवन कर। ऐसे अटूट ध्यान से उसका अवलोकन कर कि संसार की ध्वनि तेरे कर्ण छिद्रों में भले ही घुसे किन्तु तेरे हृदय तक वह न पहुंचने पावे। ऐसा करने पर तेरा विकृत रूप अपने आप तुझसे दूर हो जावेगा आकाश की तरह निर्मल तेरा स्वरूप प्रगट होगया।"

तरणतारण महात्मा के उपदेश को तन्मय होकर वह जीव ऐसा सुनता है कि उसमें वह मस्त हो जाता है किन्तु फिर मोह का भूत उसके शरीर पर चढ़कर बोलता है "कि महाराज! आपका उपदेश तो मेरे हृदय को लगता है और मैं चाहता भी हूं कि सब कुछ छोड़ छाड़ कर वायु की तरह निःसंग होकर रात दिन आप सरीखा दिगम्बर होकर ही आपके चरणों में बैठ कर आत्ममनन करता रहूं। परन्तु क्या करूं, मुझे गृहस्थाश्रम के अनेक ऋण (कर्जे) चुकाने हैं। शिशु पुत्र का पालन पोषण करना है, सयानी पुत्री का विवाह करना है। किसी का कर्ज देना, किसी से लेना है, वृद्धा माता और बूढ़े पिता

की सेवा करनी है। इत्यादि अनेक झंझटें मेरे पीछे ऐसी लगी हुई हैं जिनके कारण मुझ से घर नहीं छूट सकता और न घर मुझ को छोड़ सकता है। वन में आ कर भी अगर घर की चिन्तायें मेरे मन को व्याकुल करती रहीं तो बतलाइये मैं क्या आत्म-ध्यान करूंगा? इस लिये मुझे तो कोई ऐसा सुगम मार्ग बतलाइये जिस को मैं घर बैठे भी अवलम्बन कर सकूं।"

तब विश्व-हितङ्कर, पूज्यपाद गुरुदेव ने भव्य-शिष्य की पराधीन परिस्थिति को समझ कर उसको मुनि महल पर चढ़ने के लिये सीढ़ी के समान श्रावक धर्म का विवेचन बहुत विस्तार से किया। उसी श्रावक धर्म को मैं यहां संक्षेप से प्रचलित हिन्दी भाषा में लिखता हूं।

❋ पाक्षिक-श्रावक ❋

जो गृहस्थ पुरुष संसार शरीर-भोगों से विरक्त; अन्तरङ्ग बहिरङ्ग परिग्रह के त्यागी, ज्ञान-ध्यान-तप में लीन, निर्ग्रन्थ गुरु से आत्म-कल्याण का उपदेश सुनता है वह 'श्रावक' कहलाता है (शृणोतीति-श्रावकः)

श्रावक तीन प्रकार के हैं— १- पाक्षिक २- नैष्ठिक और ३- साधक। जो श्रावक जैनधर्म का पक्ष रख कर किसी भी प्रतिमा का आचरण विधि-पूर्वक नहीं पालता वह 'पाक्षिक' श्रावक है। जो श्रावक ग्यारह प्रतिमाओं में से (पूर्व प्रतिमाओं के आचरण सहित) किसी भी प्रतिमा का आचरण पालन करता है वह 'नैष्ठिक' श्रावक है, और जो अन्त समय समाधि-पूर्वक प्राण त्याग करता है वह 'साधक' श्रावक है।

धार्मिक मार्ग का प्रवर्तक 'देव' कहलाता है जैसे कि श्री ऋषभनाथ, श्री महावीर भगवान आदि। धर्म प्रवर्तक देव का दिव्य उपदेश जिन ग्रन्थों में विद्यमान हो वे 'शास्त्र' हैं और धार्मिक मार्ग का उच्च आचरण करते हुए जो महात्मा उस धर्म का प्रचार करते हैं वे 'गुरु' कहलाते हैं। तदनुसार अर्हन्त सिद्ध परमेष्ठी देव हैं। उनका दिव्य उपदेश जिन ग्रन्थों में विद्यमान है ऐसे समयसार, ममलपाहुड़, ज्ञान-समुच्चयसार आदि १४ ग्रन्थ रत्न 'शास्त्र' हैं और निर्ग्रन्थ, दिगम्बर महात्मा मण्डलाचार्य तारणतरण स्वामी 'गुरु' हैं।

संसार में यद्यपि अनेक तरह के देव और अनेक तरह के शास्त्र तथा अनेक वेषधारी गुरु दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु मुक्तिमार्ग उनकी आराधना से प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि उनमें रागद्वेष आदि विकार भाव विद्यमान हैं। जिन देवों के पास स्त्री शास्त्र, वस्त्र,

आभूषण आदि मौजूद हैं वे 'वीतराग' नहीं हो सकते, जिन ग्रन्थों में यज्ञ, बलि, कुर्बानी आदि के नाम से हिंसा आदि का विधान है वे धर्म-शास्त्र कैसे माने जा सकते हैं। इसी तरह जो पुरुष साधु का वेष रखकर क्रोध, मान, लोभ, लालसा आदि पर विजय नहीं पा सके हैं वे गुरु नहीं कहला सकते।

क्योंकि रागद्वेष आदि से संसार की परम्परा चलती है, रागद्वेष आदि विकार भाव घटाने से संसार–बन्धन कटता है अतः वीतराग अर्हन्तदेव ही मुक्तिदायक देव हो सकते हैं और उनका अहिंसामय उपदेश प्रगट करने वाले समयपाहुड़ आदि ग्रन्थ धर्म शास्त्र हैं और वीतराग मार्ग पर बहुत कुछ पहुंचे हुए निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु ही यथार्थ धर्मगुरु हैं। क्योंकि इनकी भक्ति, उपासना से क्रोध, काम, द्वेष आदि विकार भाव घटते हैं इस कारण यथार्थ देव शास्त्र गुरु ये ही हैं।

पाक्षिक श्रावक के हृदय में यह बात अंकित हो जाती है कि संसार के दुखों का अन्त करने के लिये

'जैन धर्म' ही उपादेय है और जैन धर्म के अधिष्ठाता अर्हन्तदेव, समयसार, ममलपाहुड़ आदि शास्त्र एवं मंडलाचार्य श्री तारण स्वामी के समान दिगम्बर साधु ही गुरु हैं ऐसा अटल श्रद्धान उसके हृदय में जम जाता है इस कारण वह आत्म–कल्याण के लिये इन ही देव शास्त्र, गुरु की भक्ति, उपासना करता है।

इसके सिवाय जीव हिंसा से बचने के लिये मद्यपान यानी शराब पीना, मांस भक्षण तथा मधुसेवन यानी शहद खाने का त्यागकर देता है। क्योंकि मांस तो दो-इन्द्रिय आदि त्रस जीवों के घात करने से उत्पन्न होता है तथा कच्चे सूखे गीले आदि सब तरह के मांस में हर समय जीव पैदा होते रहते हैं। शराब गुड़, महुआ आदि नशीली चीजों को सड़ा गलाकर बनाई जाती है इसलिये उसमें भी त्रस जीव सदा पैदा होते हैं। इसी तरह इसके पीने से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। इसी तरह शहद में भी त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है इसी लिये इन तीनों चीजों का त्याग जैन धर्मानुरागी के

लिये परम आवश्यक है।

इसके सिवाय बड़ (बरगद के फल) पीपल (पीपल के फल) ऊमर, गूलर और अंजीर इन पांच तरह के फलों के भीतर त्रस जीव होते हैं इस लिये इन उदम्बर फलों का त्याग भी जैनी के लिये आवश्यक है।

इस तरह मद्य, मांस, मधु तथा गूलर आदि पांच उदम्बर फलों का त्याग करना जैन धर्मानुयायी का आवश्यक कर्तव्य है। "देव शास्त्र गुरू की अचल श्रद्धा तथा उक्त आठ पदार्थों के खाने का त्याग" पाक्षिक श्रावक के लिये आवश्यक है।

तथा—जल में असंख्य त्रस जीव होते हैं, खुर्दबीन से अगर पानी को देखें तो वे सूक्ष्म जीव साफ दीख पड़ते हैं इस कारण उन त्रस जीवों की रक्षाके लिये पानी सदा दोहरे कपड़े से छानकर पीना भी जैन धर्मानुयायी के लिये आवश्यक है।

जघन्य श्रावक के लिये उपरि लिखित बातों का आचरण तो जरूर होना चाहिये। इस लिये जो जैनी

जैन धर्म का पक्ष अपने हृदय में रखकर इतना ऊपर लिखा आचरण पालता है वह पाक्षिक श्रावक कहलाता है।
प्रतिमाओं का विधिपूर्वक आचरण न करने वाले हमारे जैन भाई पाक्षिक श्रावक हैं।

नैष्ठिक श्रावक

जिन भव्य जीवों को संसार, शरीर, भोगोंसे अरुचि हो जाती है वे सम्यग्दर्शन पूर्वक प्रतिमाओं या प्रतिज्ञाओं को देव, गुरु, तथा जिनवाणी के समक्ष धारण करते हैं, वे ही संयमी या व्रती अथवा नैष्ठिक श्रावक कहलाते हैं।

ग्यारह प्रतिमाएं निम्न प्रकार हैं--

दंसण, वय, सामाइय,—

पोसह सचित्त राय भत्तीये,

बंभारंभ परिग्गह

अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदो य।

(ज्ञान समुच्चयसार)

अर्थात्—

पहली — दर्शन प्रतिमा।

दूसरी — व्रत प्रतिमा।

तीसरी — सामायिक प्रतिमा।

चौथी — प्रोषधोपवास प्रतिमा।

पांचवीं — सचित्तत्याग प्रतिमा।

छठी — रात्रिभोजन त्याग प्रतिमा।

सातवीं — ब्रह्मचर्य प्रतिमा।

आठवीं — आरम्भ त्याग प्रतिमा।

नवमी — परिग्रह त्याग प्रतिमा।

दशमी — अनुमति त्याग प्रतिमा।

ग्यारहवीं — उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा।

अब इन प्रतिमाओं का पृथक् २ स्वरूप लिखा जाता है।

पहली - दर्शनप्रतिमा

पहिली—
दर्शन प्रतिमा।

इस प्रथम प्रतिमा में सम्यग्दर्शन के पच्चीस मल दूर करके तत्वों में, अपनी शुद्धात्मा में – देव, शास्त्र, गुरु में निर्मल श्रद्धान किया जाता है। संसार, शरीर वा भोगों से उदासीनता (अरुचि) होती है, और अष्टमूल गुणों को धारण करके उनके अतिचारों का, सप्त व्यसनों का तथा बाईस अभक्ष्यों का त्याग किया जाता है, तब पहली सम्यग्दर्शन प्रतिमा का भले प्रकार पालन होता है।

❀ सम्यग्दर्शन ❀

निज आत्मा की अनुभूति को सम्यग्दर्शन कहते हैं। इस अनुभूति को वचन द्वारा समझाने के लिये "आत्मा की श्रद्धा, तत्वों का यथार्थ श्रद्धान" आदि लक्षण सम्यग्दर्शन के बताये गये हैं। जिस तरह कोई ज्योतिष, नैमित्तिक ज्ञान या अवधिज्ञान आदि विशेष ज्ञान उत्पन्न होने से आत्मा में बहुत आल्हाद, हर्ष, सुख प्रगट होता है ठीक ऐसा ही अनुपम हर्ष सम्यग्दर्शन हो जाने पर होता है।

सम्यग्दर्शन को विरूप करने वाले दर्शन मोहनीय कर्म का जब उपशम होता है तब औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है, जो कि होता तो पूर्ण निर्मल है किन्तु रहता सिर्फ अन्तर्मुहूर्त तक है। दर्शन मोहनीय के समूल क्षय

हो जाने से क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है। क्षायिक सम्यग्दर्शन पूर्ण निर्मल होता है और फिर कभी छूटता भी नहीं है, तथा दर्शन मोहनीय कर्म के क्षयोपशम हो जाने पर क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है, यह अधिक से अधिक ६६ सागर तक रहता है।

क्षयोपशम सम्यग्दर्शन पूर्ण निर्मल नहीं होता है इस कारण उसमें कुछ दोष उत्पन्न होते रहते हैं। यह दोष चल, मल, अगाढ़ कहलाते हैं। चैत्यालय धर्मशाला आदि धर्मस्थानों को अपने रुपयों से बने होने के कारण चैत्यालय धर्मशाला को अपनी समझना चल दोष है। शान्ति करने के लिये शान्तिनाथ की उपासना करनी चाहिये, रोग विघ्न आदि दूर करने के लिये भगवान पार्श्वनाथ की उपासना करना चाहिये इत्यादि मान्यता अगाढ़ दोष है। मल दोष २५ तरह का है।

अब पच्चीस मल तथा उपर्युक्त अष्ट मूल-गुणादि का पहले नाम, पश्चात् सबका पृथक् २ विवेचन करेंगे—

—पच्चीस मलों के नाम—

—आठ दोष—

१–शंका, २–कांचा, ३–विचिकित्सा, ४–मूढ़दृष्टि, ५–अनुपगूहन, ६–अस्थितीकरण, ७–अवात्सल्य, ८–अप्रभावना।

—आठमद—

१–ज्ञानमद, २–पूजामद, ३–कुलमद, ४–जातिमद ५–बलमद, ६–ऋद्धिमद, ७–तपमद, ८– और रूपमद।

—छह अनायतन—

१–कुदेव, २–कुगुरु, ३–कुशास्त्र, ४–कुदेवोपासक, ५–कुगुरूपासक, ६–कुशास्त्रोपासक।

—तीनमूढ़ता—

१–लोकमूढ़ता, २- पाखंडिमूढ़ता, ३- देवमूढ़ता।

इस प्रकार आठ दोष, आठ मद, छह अनायतन, तीन मूढ़ता, ऐसे कुल पच्चीस मल होते हैं, इन सबको

त्याग देने से ही सम्यग्दर्शन निर्मल रहता है। इन पच्चीस में से पहले जो आठ दोषों के नाम आये हैं, उन से विपरीत आठ गुण या अष्टअंग निम्न प्रकार हैं—

१- निःशंकित अंग, २- निःकांक्षित अंग, ३- निर्विचिकित्सित अंग, ४- अमूढ़दृष्टि अंग, ५- उपगूहन अंग, ६- स्थितिकरण अंग, ७-वात्सल्य अंग, ८- प्रभावना अंग, ।

—अष्ट मूल गुण—

१- जिनवाणी दर्शन (स्वाध्याय) २- मद्यत्याग, ३- मांसत्याग, ४- मधुत्याग, ५- जीव दया पालन, ५- उदम्बर फलत्याग, ७- रात्रि भोजनत्याग, ८- जल छानन व्यवहार।

—सप्त व्यसन—

१- जुआ, २- मांस, ३- मद्य, ४- वेश्या, ५- शिकार, ६- चोरी, ७- परस्त्री सेवन।

—अभक्ष्य—

जो पदार्थ खाने योग्य न हों उन्हें अभक्ष्य कहते हैं। अभक्ष्य के मूल ५ भेद हैं— १- त्रसघात, २- अनन्त-

स्थावरघात, ३- मादक, ४- अनिष्ट, ५- अनुपसेव्य।

जिन चीजों के खाने से त्रस जीवों का घात होता है वे 'त्रसघात' नामक अभक्ष्य है। जैसे द्विदल, कमलडंडी, द्रोणपुष्प आदि।

जिन वस्तुओं के खाने में अनन्त स्थावर जीवों का घात होता है वे अनन्त स्थाकर घात नामक अभक्ष्य हैं जैसे आलू, गाजर, मूली, अदरक, अरबी, शलगम, सकरकन्दी, घुइयां आदि साधारण वनस्पति।

जो चीजें नशा पैदा करने वाली हैं वे मादक अभक्ष्य हैं, जैसे भंग, चरस, गांजा; तम्बाखू आदि।

जिन चीजों के खाने में कोई हिंसा आदि का पाप तो न लगे किन्तु जो चीजें स्वास्थ्य के विरुद्ध हों यानी रोग पैदा करने वाली हों वे अनिष्ट हैं। जैसे ज्वर वालों को कलाकन्द; जुकाम आदि वालों को दही अभक्ष्य है।

जो पदार्थ उत्तम पुरुषों के खाने योग्य न हों वे अनुपसेव्य हैं। जैसे चमड़े की रक्खी हींग; रजस्वला स्त्री अस्पर्श्यशूद्र आदि का छुआ हुआ भोजन, गोमूत्र,

जूठन, पेशाब आदि।

इन पांचों प्रकार के अभक्ष्य पदार्थों में ही समस्त अभक्ष्य पदार्थों का अन्तर्भाव हो जाता है।

त्रसघात, बहुस्थावरघात के विशेष २२ भेद भी प्रसिद्ध हैं जो कि निम्नलिखित हैं—

१- ओला, २- दहीबड़ा; ३– रात्रि भोजन, ४– बहुबीजा, ५– बेंगन; ६–संधान; ७- बड़; ८-पीपल, ६- ऊमर; १०- कठूमर; ११- पाकर; १२- अज्ञात-फल; १३- कन्दमूल; १४- माटी; १५- विष; १६- मांस; १७- मधु; १८- मक्खन; १६- मदिरा; २०- तुच्छफल, २१- तुषारमारी हुई वस्तु; २२- चलित रस।

इस प्रकार आठ दोषों से लेकर यहां पर्यंत जितने भी नाम निर्देश किये गये हैं उनमें से गुणों का धारण दोषों का त्याग करना सो दर्शन प्रतिमा है। अब समस्त नामों का क्रमशः पृथक् २ विशेष विस्तार से वर्णन करते हैं।

* आठ दोष *

—(१)—

" शंका–दोष "

पच्चीस मलों में सब से पहला यह शंका नाम का दोष है। यह दोष जिनके हृदय में हमेशा बना रहता है उनका सम्यक्त्व बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है; तथा उन्हें जिनेन्द्र की वाणी में विश्वास नहीं होता और यहां तक उनका पतन हो जाता है कि वह अपनी आत्मा को भी विनाशिक जानने लगते हैं शरीर में ममत्व बुद्धि हो जाती है; तथा सात भय भी शंकित-हृदय वालों में ही पाये जाते हैं अर्थात् उन्हें—

१–इहलोक भय— इस जन्म सम्बन्धी नाना तरह का भय अर्थात्— मरण का, हानि लाभ, इष्ट वियोग आदि का (डर) शंका दोष से दूषित पुरुष के मन में रहता है।

२–परलोक भय— अगले जन्म में न जाने मेरी क्या दशा होगी। आदि विचारों द्वारा भयभीतपना।

३– मरण भय— कहीं जल्दी मरण न हो जावे।

४– वेदना भय— बीमारी आदि कष्टों का भय।

५–अरक्षा भय—हमारा रक्षक कोई नहीं है ऐसा समझ कर भयभीत रहना।

६-अगुप्ति भय—चौरादिक का भय हमेशा मनमें रहना।

७- अकस्मात् भय— अचानक आ जाने वाले उपसर्ग आदि से भय। ये भय सम्यग्दृष्टि को बिल्कुल नहीं रहते वह निर्भय रहता है।

इस प्रकार सप्तभय सहित शंका दोष को त्याग कर निःशंकित अंग को धारण करना चाहिये; दर्शन प्रतिमा धारी का यह सर्व प्रथम कर्तव्य है।

(२)

कांक्षा—दोष

पूर्व में भोगे विषयों का स्मरण; आगे भी विषयों की वाञ्छा तथा वर्तमान के विषयों में अति लंपटपना सो कांक्षादोष है। और इस प्रकार की प्रवृत्ति का त्याग करना सो दूसरा निःकांक्षित अंग है।

(३)

विचिकित्सा दोष

अपने को ही अच्छा समझना पर से या धर्मात्मा मुनि आदि तथा वस्तु स्वरूप से ग्लानि करना सो विचिकित्सा या ग्लानि नामक दोष है इसका त्याग करना सो निर्विचिकित्सित नामका सम्यक्त्वका तीसरा अंग है। किन्तु गृहस्थ को मानसिक ग्लानि दूर करने के लिये व्यवहार शुद्धि का भी विचार रखना चाहिये।

व्यवहार—शुद्धि

यद्यपि वास्तविक शुद्धि आत्मा के राग, द्वेष, क्रोध मान आदि मैलों के दूर करने से होती है किन्तु उस

परमार्थ शुद्धि में सहायक व्यवहार शुद्धि है। गृहस्थाश्रम में रहने वाले श्रावक को व्यवहार शुद्धि विशेष करके अपने अमल में लानी चाहिये। व्यवहार शुद्धि के बिना गृहस्थ के मानसिक शुद्धि नहीं हो सकती।

यह व्यवहार शुद्धि जिसको लोक शुद्धि भी कहते हैं— आठ तरह की हैं—

१- मृत्तिका शुद्धि, २- भष्म शुद्धि, ३- जल शुद्धि, ४- अग्नि शुद्धि, ५- वायु शुद्धि, ६- काल शुद्धि, ७- गोमय शुद्धि, ८- मन्त्र शुद्धि।

१– जो शुद्धि मिट्टी के द्वारा की जाती है वह मृत्तिका शुद्धि है। जैसे टट्टी हो आने के बाद मिट्टी से मल कर हाथ धोना।

२– जो भष्म (राख) से शुद्धि की जाती है वह भष्म शुद्धि है। जैसे पीतल आदि के जूठे बर्तनों को राख से मांज कर शुद्ध करना।

३– पानी से जो शुद्धि की जाती है वह जल शुद्धि है। जैसे अस्पर्श्य पदार्थ (टट्टी आदि) का स्पर्श हो

जाने पर पानी से धोना, नहाना आदि।

४-- जो आग के द्वारा शुद्धि होती है सो अग्नि शुद्धि है। जैसे धातु के बर्तनों का अस्पर्श्य पदार्थ से अपवित्रहो जानेपर उन्हें आगमें देकर शुद्ध करना।

५-- हवा लगते रहने से जो शुद्धि हो जाती है वह वायु-शुद्धि है। जैसे अपवित्र लकड़ी, नदी के जल आदि की हवा से शुद्धि हो जाती है।

६-- कुछ समय बीत जाने पर जो शुद्धि मानी जाती है सो काल शुद्धिहै जैसे-सूतक पातक आदिकी शुद्धि।

७-- गाय भैंस के गोबर से जो शुद्धि की जाती है सो गोमयशुद्धि है। जैसे अपवित्र जमीन पर गोबर से लीपने पर शुद्धि की जाती है।

८-- जो मन्त्र पढ़कर शुद्धि की जाती है सो मंत्र शुद्धि है

इसके सिवाय लेन देन की शुद्धि (ईमानदारी) भी गृहस्थ के लिये परम-आवश्यक है।

इन व्यवहार शुद्धियों से मानसिक ग्लानि दूर हो जाती है इस लिये यह व्यवहार शुद्धि मानसिक शुद्धि

का कारण है। और मानसिक शुद्धि से ही आत्म शुद्धि होता है। इस कारण व्यवहार शुद्धि परमार्थ शुद्धि की साधक है। अतः गृहस्थों को इन व्यवहार शुद्धियों का यथा अवसर पालन करना चाहिये।

---

(४)

मूढ़दृष्टि—दोष

तीन मूढ़ता में फंस कर हेयोपादेय का कुछ भी विचार नहीं करना सो मूढ़दृष्टि दोष है, और इसका त्याग करना सो सम्यक्त्व का चौथा अमूढ़दृष्टि अंग है।

---

(५)

अनुपगूहन—दोष

दूसरों के दोष प्रगट करना तथा अपने छिपाना सो यह दोष है। इससे विपरीत उपगूहन नाम का पांचवां अंग है।

(६)

अस्थितिकरण दोष

धर्म से डिगते हुये अपना तथा साधर्मी भाइयों का स्थितिकरण नहीं करना सो दोष और इससे विपरीत स्थितिकरण नाम का अंग।

(७)

अवात्सल्य--दोष

धर्मात्माओं से गौ वच्छ के समान प्रेम नहीं करना सो दोष, इससे विपरीत वात्सल्य नामक अंग है।

(८)

अप्रभावना-दोष

धर्म की प्रभावना नहीं करना तथा दूसरे करें तो विघ्न करना या अनुमोदना नहीं करना सो दोष और प्रभावना द्वारा जिनधर्म का महत्व फैलाना सो आठवां-

प्रभावना अंग है। इस प्रकार आठ दोष वा उनसे विपरीत आठ अंगों का संक्षेप से वर्णन किया।

आठमद

आठ मदों के नाम जो पहले कह आये हैं उनमें से कोई या सब मदों का करना सो आठ मद दोष है। अर्थात् ज्ञान, पूजा, कुल, जाति बल, ऋद्धि, तप, तथा शरीर, इनमें से कर्मोदय वश कुछ या सबके प्राप्त होने पर अभिमान करना सो मद दोष है। मद नहीं करना सो गुण है।

छह अनायतन

धर्म के स्थान को आयतन तथा अधर्म या कुधर्म के स्थान को अनायतन कहते हैं सो छह हैं—अर्थात

कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और तीन इनके मानने वाले अर्थात कुदेवोपासक, कुगुरूपासक, कुधर्मोपासक, इनकी मन वचन काय से सराहना या सत्कारादि करना सो छह अनायतन दोष हैं इनसे उल्टे गुण।

तीन मूढ़ता

१-लोक मूढ़ता—मिथ्यादृष्टियों की देखा देखी मिथ्यात्व को पुष्ट करने वाले कार्य करना सो लोक मूढ़ता है। २-पाखंडी मूढ़ता—संसार चक्र में स्वयं फंसे आरंभी, कषायी, विषयी, ढोंगी साधु, पण्डित आदि पाखंड रचने वालों से दूर रहना चाहिये उनका साथ करना, कहा मानना सो पाखंडी मूढ़ता है। ३-देव मूढ़ता—रागी, द्वेषी, देवी, दहाड़ी, माता आदि देव देवियों को पुत्रादि वर की इच्छा से या किसी माता आदि को बीमारी के भय से मानता करना पूजना या दूसरों से पुजवाना, अनुमोदना करना सो देव मूढ़ता है।

पहली प्रतिमा का धारी इन तीन मूढ़ताओं से बचता है।

अष्ट मूल गुण

पहली प्रतिमा का धारी जब अपना पच्चीस दोष रहित शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है तब वह सम्यग्ज्ञानी चारित्र मोहनीय कर्मके उपशम वा क्षयोपशम होने से कुछ चारित्र को धारण करता है अर्थात् पहली प्रतिमा में ही निरतिचार आठ मूलगुण, सप्तव्यसन, २२ अभक्ष्य त्याग इतना चारित्र पूर्ण पालन करता है।

निरतिचार अष्ट मूलगुण इस प्रकार हैं—

१– जिनवाणी दर्शन— जिस समय श्री चैत्यालय जी दर्शनार्थ जावें तो घर से निकलते अपना अहोभाग्य मानते मौन पूर्वक जावें, मन, वचन, काय को शुद्ध और सरल करके जावें, यदि मन, वचन, काय की

चंचलता सहित चैत्यालय जावेंगे तो अतीचार लगेगा, यह पहली प्रतिमा का धारी सरल चित्त होता है।

२- **मद्य त्याग**— मूलगुण, इसके निम्न अतिचारों को बिलकुल त्याग देना चाहिये— नशैली वस्तु तमाखू व तमाखू की बनी हुई चीजें, अस्पताल की दवा, खाना, बने हुये बाजारू अर्क, आसव (द्राक्षासव आदि) मर्यादा रहित दूध, दही, मही आदि और अथाणा (आचार) वगैरह का त्याग करना सो मद्य त्याग मूलगुण है।

३- **मांस त्याग**—इसके अतिचार मर्यादा रहित आटा, व भोजन की सामग्री, चमड़े आदि से स्पर्शित हींग आदि, बना हुआ समुद्री नमक (यह भी मांसवत है) तथा अभक्ष्य पदार्थ समस्त, मांस के अतीचार हैं अर्थात् मर्यादा रहित चीजें व अभक्ष्य-भक्षण व द्विदल कच्चे दूध, दही, मही में दो दाल वाली वस्तु मिला कर भक्षण करना मांस खाने के समान है।

४- मधु त्याग— इसके ये अतिचार हैं-आचार, मुरब्बा, गुलकंद, फूल सूंघना, दही मही में गुड़ शक्कर मिला कर खाना तथा शहद बेचना इन अतिचारों का बराबर त्याग करना ही मधुत्याग है ऊपर कहे अतिचार लगाना मधु (शहद) खाने के ही समान दोष है। पहली प्रतिमाधारी को अतिचार सहित मधु का त्याग करना चाहिये ।

५-जीवदया पालन—इस मूल गुण के अतिचार इस प्रकार हैं—सावधानी से जीवों को देख कर कोई काम न करना। रास्ते चलते नीचे देखकर न चलना, अपने आधीन स्त्री पुत्रादि तथा जानवर-पशुओं को पीड़ा देना आदि अतिचारों का त्याग करके अपना स्वभाव दयालु बनाना चाहिये ।

६-उदंबरफल त्याग के अतिचार—अभक्ष्य फलों का खाना, सड़े घुने अनाज का खाना, तथा तुच्छ फल (जिसमें थोड़ा स्वाद हिंसा बहुत) आदि

अभक्ष्य फल वा जिन वृक्षों में दूध निकलता हो उनके फल खाना जैसे—पोपइया, खिन्नी, करौंदा आदि इन का त्याग करना चाहिये तभी बड़, पीपर, ऊमर, कठूमर पाकर आदि का सच्चा त्याग है।

७–रात्रिभोजन के अतिचार—दिन अस्त होते होते भोजन करना या उदय होते ही भोजन करना दो दो घड़ी न बचाना, बासा भोजन करना या रात्रि के बने पदार्थ खाना आदि इस मूल गुण के अतिचार हैं प्रतिमा धारी को अवश्य बचाना पड़ेगा तभी प्रतिमा है।

रात्रि भोजन करने से जीव हिंसा का पाप तो लगता ही है किन्तु कभी कभी प्राणों से हाथ धोने पड़ते हैं। यू० पी० के एक गांव में एक मुसलमान के घर बरात आई थी। बरात के लिये उसने रात में खीर पकाई संयोग से छत में से एक काला सांप उस खीर में आ गिरा जो कि उसी में मर गया रात के कारण सांप का कुछ पता न चला। वह खीर बरातियों ने खाई उनमें

से बहुत से रात को सोते के सोते रह गये फिर कभी न जागे और कई सवेरे बेहोश पाये गये।

हरिद्वार में कुम्भ के मेले पर एक आदमी ने रात को रोटी खाने के लिये एक दुकानदार से गाजर का अचार लिया उसमें मरी हुई एक चुहिया भी उसे मिल गई खाते खाते जब दांतों से वह जल्दी न टूटी तब उसने उसे एक ओर रख दिया। सवेरे जब उठा तब उसकी तबीयत खराब थी जब उसने रात का वह बचा हुआ अचार देखा तब पता चला कि चूहा का रस भी उसके पेट में पहुंचा है। वैद्य ने उसे औषध देकर उलटियां (कय) कराई तब उसकी तबियत ठीक हुई।

इस कारण रात्रि में भोजन करने का त्याग धार्मिक दृष्टि के सिवाय शारीरिक दृष्टि से भी बहुत उपयोगी है।

८– जल छानन— के अतिचार, पानी छान कर तुरन्त गलना न सुखाना, इकहरे छन्ने से पानी छानना, छन्ने को अपवित्र रखना, छन्ने से हाथ पैर

पोंछना, सड़ा पुराना छन्ना, पीने के सिवाय और काम के पानी को न छानना, ये सब अतिचार हैं इनको त्याग कर सावधानी सहित चाहिये उतना जल खर्च करना मूलगुण है।

यह जल छानन प्रतिज्ञा वाला दयालु श्रावक जहां के जल की विलछानी वहीं पहुंचाता है। तथा छाना हुआ भी मर्यादा के बाहर का जल खर्च नहीं करता, छने जल की मियाद ४८ मिनट है बाद में उसे फिर छाने। इस प्रकार इन अष्ट मूलगुणों के मोटे अतीचार कहे बारीक के लिये बड़े श्रावकाचार देखना चाहिये।

जल में असंख्य त्रसजीव होते हैं धूप में जल रख देने पर यदि ध्यान से देखें तो उनमें से बहुत से जीव चलते फिरते नजर आते हैं बहुत से सूक्ष्म जीव खुर्दबीन से देखने पर दीख पड़ते हैं। जल को यदि दोहरे कपड़े से छान लिया जावे तो वे जीव जल में नहीं पहुंचने पाते। इस लिये जल छान कर व्यवहार में लाने से पानी के उन त्रस जीवों की रक्षा हो जाती है।

इसके सिवाय जल छान कर पीने से अपने शरीर को भी रक्षा होती है क्योंकि पानी के उन जीवों में कोई कोई जीव रोग पैदा करने वाले होते हैं अतः वे पेट में पहुंच कर अनेक तरह के विकार उत्पन्न कर देते हैं। इतना ही नहीं, मेंढक आदि पंचेन्द्रिय जीव भी शुरू २ में बहुत छोटे होते हैं पानी यदि न छाना जाय तो वे छोटे मेंढक तक पानी के साथ पेट में पहुंच जाते हैं।

आज से १३-१४ वर्ष पहले मुलतान नगर में मूलचन्द कपूर नामक एक युवक के पेट में बहुत दर्द होता था और थूक के साथ लोहू आता था उसने अनेक इलाज किये, आराम न हुआ तब मोघा के प्रसिद्ध डा० श्रीमान रायबहादुर मथुरादास जी ने ऐक्सरे से मालूम करके पेट का आपरेशन करके ५॥ साढ़े पांच छटांक बजन का जीवित मेंढक निकाला था। डाक्टर साहिब ने बतलाया कि पानी पीते समय पानी के साथ मेंढक का बच्चा पेट में चला गया, वही पेट में बढ़ कर इतना बड़ा होगया।

❀ सात व्यसन ❀

इन सात व्यसनों में जूवा खेलना, वेश्या सेवन, चोरी, परस्त्री सेवन इनचार के त्याग की प्रतिज्ञा करै बाकी तीन का अर्थात् मांस मदिरा शिकार का त्याग तो अष्ट मूलगुण धारण करने में स्वयं हो ही जाता है। इन सात व्यसनों का त्यागी ही पहली प्रतिमा धारण करने योग्य है।

२२ अभक्ष्य

अष्ट मूलगुणों को निरतिचार पालने के लिये २२ अभक्ष्यों का त्याग करना चाहिये। इनके त्याग करने से मूलगुण स्वयं निर्मल पलने लगते हैं। बाईस अभक्ष्यों के नाम पहले दे दिये हैं, आगे एक प्रसिद्ध छन्द दिये देते हैं जिसमें २२ अभक्ष्यों के नाम हैं; याद कर लेना चाहिये।

'छन्द'

-(२२ अभक्ष्य)-

१ २ ३
ओला, घोर बड़ा, निशि-भोजन,
४ ५ ६
बहुबीजा, बेंगन, सन्धान,
७ ८ ९ १०
बड़, पीपर, ऊमर, कठ ऊमर,
११ १२
पाकर, फल जो होत अजान,
१३ १४ १५ १६
कन्दमूल, माटी, विष, आमिष,
१७ १८ १९
मधु, मक्खन, अरु मदिरा पान,
२० २१ २२
फल अति तुच्छ, तुषार, चलितरस।
ये जिनमत बाईस बखान।

पहली प्रतिमाधारी के चिन्ह

१— प्रशम (शान्त स्वभाव)

२— संवेग (धर्म, धर्मफल में प्रेम)

३— अनुकम्पा (परम दयालु)

४— आस्तिक्य (देव, गुरू शास्त्र)
व उनके कथन में पूरा श्रद्धान)

ये चार चिन्ह सम्यग्दृष्टि के हैं, पहली प्रतिमा के धारी को उक्त चिन्ह युक्त होना चाहिये। सम्यग्दृष्टि, पहली प्रतिमाधारी के गुण निम्न प्रकार हैं।

१- संवेग— संसार के दुःखों से भयभीत होते हुये धर्म वा धर्म के फल में प्रेम करना।

२- निर्वेग— संसार, शरीर व भोगों से विरक्त रहना।

३- निन्दा— अपने आप अपने कर्मों की निन्दा करना।

४- गर्हा— गुरु आदि के समक्ष अपने दोष कहना, सो गर्हा-गुण है।

५- उपशम— कषायों को मन्द करते हुये शान्त रहना, सो उपशम गुण है।

६- भक्ति- देव, गुरु, धर्म में अटल प्रेम।

७- वात्सल्य— साधर्मी जनों के प्रति गौ-वत्स, के समान प्रीति करना।

८- अनुकम्पा—दुःखी जीवों के दुख को देख कर हृदय में करुणा का स्रोत बह जाना, तथा समस्त जीवों पर पूर्ण दयाभाव रखना।

सम्यग्दर्शन की महिमा

सम्यग्दर्शन हो जाने पर यह निश्चय हो जाता है कि मोक्ष अवश्य होगी, चाहे वह उसी भव में हो अथवा अन्य किसी भव में हो। तथा सम्यग्दर्शन होते ही ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान और चारित्र सम्यक्चारित्र हो जाता है।

इसके सिवाय सम्यग्दृष्टी जीव मर कर उत्तम देव होता है। मनुष्य हो तो सुख-सम्पन्न कुलीन मनुष्य होता है।

यदि सम्यग्दर्शन होने से पहले नरक आयु का बंध हो जावे तो सम्यग्दर्शन हो जाने पर वह पहले नरक से नीचे नहीं जाता (क्योंकि बांधी हुई आयु छूट नहीं सकती) जैसे कि राजा श्रेणिक ने जब एक परम तपस्वी मुनि महाराज के गले में मरा हुआ सांप डाला था उनके ऊपर शिकारी कुत्ते छोड़े थे तब उसके सातवें नरक की आयु का बन्ध हुआ था परन्तु पीछे वह भगवान महावीर का परम भक्त एवं धार्मिक बन गया तब उसको क्षायिक सम्यग्दर्शन होगया। उस समय उसकी सातवीं नरक की आयु घट कर पहले नरक की ८४ हजार वर्ष की आयु रह गई।

जिस जीव को सम्यग्दर्शन हो जाता है वह मर कर स्त्री पर्याय नहीं पाता जैसे सीता ने सम्यग्दर्शन के

प्रभाव से १६वें स्वर्ग में देवी न होकर प्रतीन्द्र का पद प्राप्त किया।

जिसको सम्यग्दर्शन हो जाता है वह नपुन्सक (हीजड़ा) नहीं होता है और एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असैनो पंचेन्द्रिय जीव भी नहीं होता है।

तथा सम्यग्दृष्टी जीव मर कर उत्तम वैमानिक देव होता है भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव नहीं होता, न देवी ही होता है।

अल्पायु, दरिद्र, अन्धा, लङ्गड़ा, गूंगा, बहरा, विकलाङ्ग, नीचकुली, दुखी भी सम्यग्दृष्टी नहीं होता है।

यदि सम्यग्दर्शन होने से पहले तिर्यञ्च आयु बांधी होय तो राजा, महाराजाओं के यहां सुख से पालन पोषण पाने वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय हाथी, घोड़ा आदि पशु होता है।

खानपान के पदार्थों की मर्यादा

१— आटा वेसन, सिंघाड़े का चून, पिसे हुये मसाले, हल्दी धनियां आदि पिसा हुआ सामान बरसात में तीन (३) दिन, गर्मी में. पांच दिन, ठंडक में सात दिन तक भक्ष्य है उसके बाद अभक्ष्य है।

नोट— गर्मी, सर्दी, बरसात की प्रत्येक ऋतु अष्टान्हिका से बदल जाती है।

२— छने हुये पानी की मर्यादा १ मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी (४८ मिनिट) की है, लवंगादि से प्रासुक किये हुये अर्थात् स्पर्श, रस, गंध, वर्ण बदले हुये जल की दोपहर या छह घंटे की मियाद है। साधारण गर्म जल की ४ पहर या १२ घंटे की मियाद है। तथा अधन सरीखे गर्म जल की आठ पहर या (२४ घंटे) की मियाद है।

३— दूध को दुहकर ४८ मिनिट के अन्दर या तुरन्त छान कर गर्म कर लेवे बाद में जमाने से जो दही हो उसे २४ घंटे के अन्दर ही काम में लेवें, बाद

अभक्ष्य है ।

मठा में भान्ते समय यदि पानी डाला जावे तो उस मठा की मियाद दिन भर, यदि बाद में पानी डाले तो ४८ मिनिट वा प्रासुक (गरम) पानी डाले तो जितनी उस पानी की मियाद है उतनी उस मठा की है।

नोट— दूध मर्यादा के बाहर होने से, उसमें पंचेन्द्रिय सन्मूर्छन गाय व भैंस के आकारधारी जीव हो जाते हैं ।

४— शक्कर के बने हुये बूरा, बतासा, आदि की मर्यादा शीत ऋतु में एक महीना। ग्रीष्म ऋतु में पन्द्रह दिन, बरसात में सात दिन की है।

५— घी, गुड़, तेल आदि की मर्याद स्वाद न बिगड़े तब तक की है। बाद में स्वाद बिगड़ते ही अभक्ष्य हैं ।

६— खिचड़ी, भात, दाल, कढ़ी, तरकारी, लपसी आदि जिनमें खूब पानी रहता है उनकी मर्याद दोपहर या छह घंटे की। तथा रोटी, परांठे, हलुवा, पूरणपूरी,

गुझिया, खोचला, शीरा आदि जिनमें पानीका साधारण अंश रहता है उनकी मर्याद ४ प्रहर या १२ घंटे की और पुड़ी, पपड़िया, खाजा, लड्डू, घेवर, खारे सेव, पापड़, खुरमा, पपची आदि की मर्याद जिनमें जल का किञ्चित अंश रहता है उनकी ८ पहर या २४ घंटे की। और जिस भोजन में पानी न पड़ा हो जैसे मगद कसार, सत्तू आदि की मर्याद आटा के [illegible]र जानना। बीयां, सिमंइयां, वड़ी, बिजौड़े आदि की मियाद १२ घंटे या दो पहर की है, ज्यादा दिन रखना मद्य मांस का अतीचार है।

७— मीठे दही की मर्याद दो घड़ी (४८ मिनिट) की है।

८— गुड़ आदि के साथ दही छाछ खाना अभक्ष्य है।

९— मिठाई, कलाकन्द गुलाब जामुन, जलेबी आदि जिनमें किञ्चित पानी का अंश है, उसकी २४ घंटे या आठ पहर की मर्याद है। इतनी सब चीजों की

मर्यादा हमने संक्षेप से लिखी, विशेष विस्तार से देखना हो अन्य ग्रन्थ देखें। हमने तो जितने का सबको हमेशा काम पड़ता है उतना ही शास्त्रानुसार लिखा है।

इस प्रकार यहां तक पहली प्रतिमा का वर्णन हुआ पहली प्रतिमा के धारी दार्शनिक श्रावक को जितना वर्णन कर आये हैं, उतनी बातों का पालन अवश्य करना चाहिये, अन्यथा वह प्रतिमाधारी मानने योग्य नहीं हैं। सावधानी से सब बातों पर ध्यान देकर इस प्रतिमा को पालने से अवश्य कल्याण होगा।

दर्शन प्रतिमाधारी का कर्तव्य

इस पहली प्रतिमा वाले को दूसरी प्रतिमा धारण करने की अभिलाषा रहनी चाहिये व उसका अभ्यास भी थोड़ा २ करके अपनी आत्म-शक्ति का उद्योग करना चाहिये।

इति—

पहली दर्शन प्रतिमा वर्णन

समाप्त

। शुभं-भूयात् ।

दूसरी - व्रतप्रतिमा

दूसरी-व्रत प्रतिमा का—

* स्वरूप *

जिस श्रावक के प्रथम प्रतिमा को पालते हुये अत्यन्त शुभ भाव हो जाते हैं, और जिसे हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पांच पापों से एक देश विरक्ति हो जाती है वह दूसरी प्रतिमा को ग्रहण करता है, तथा माया, मिथ्या, निदान इन तीन शल्यों से रहित वह दयालु श्रावक द्वितीय प्रतिमा में पालन करने योग्य बारह व्रतों को भली भान्ति पालते हुये, उन व्रतों में लगने वाले प्रत्येक व्रत के पांच पांच अतीचारों से बचता है और प्रत्येक व्रत की पांच पांच भावनाओं को भाता है। पंचाणुव्रतों की पच्चीस भावनायें हैं, पंचाणु-व्रतों के वर्णन में आगे उन पच्चीस भावनाओं का

वर्णन करेंगे, अब १२ व्रतों के नाम कह कर प्रत्येक का स्वरूप क्रमशः कहेंगे, तथा आगे यह भी लिखेंगे कि इस द्वितीय प्रतिमाधारी श्रावक के और क्या २ कर्तव्य हैं। इस प्रतिमा का पूर्ण चारित्र पांच अणुव्रतों की निर्मलता का कारण है।

बारह व्रतों के शुभ-नाम

पंच-अणुव्रत

१- अहिंसाणुव्रत ।

२- सत्याणुव्रत ।

३- अचौर्याणुव्रत ।

४- ब्रह्मचर्याणुव्रत ।

५- परिग्रह प्रमाणाणुव्रत ।

तीन गुणव्रत

६- दिग्व्रत ।

७- देशव्रत ।

८- अनर्थदंड त्यागव्रत ।

चार शिक्षाव्रत

९- सामायिकव्रत ।

१०- प्रोषधोपवासव्रत ।

११- भोगोपभोग परिमाणव्रत ।

१२- अतिथिसंविभागव्रत ।

पांच अणु-व्रतों का—

स्वरूप

(१)

अहिंसाणु-व्रत

मुनि और श्रावक धर्म की मूल-जड़ अहिंसा है, इस अहिंसा की साधना के लिये ही समस्त आरम्भ और परिग्रहादि का त्याग कराया जाता है। कषाय-वश अपने और दूसरेके अन्तरंग वा बहिरंग प्राणों का वियोग कर देना सो हिंसा है। यह चार तरह की है।

१– संकल्पी, २– आरम्भी, ३– उद्योगी, ४–और विरोधी, इनमें से श्रावक, को संकल्पी हिंसा का पूर्ण रूप से (मन वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करना चाहिये, बाकी की आरम्भी, उद्योगी और

विरोधी हिंसा का, श्रावक पूर्ण त्याग तो नहीं कर सकता पर हां यदि सावधानी और विवेक बुद्धि, तथा विचार पूर्वक बर्ताव करे तो इन तीन हिंसाओं से भी बहुत कुछ बच कर अतिशय युक्त पुण्य का बंध कर सकता है। अणुव्रती श्रावक त्रस जीवोंकी हिंसा का त्यागी तो होता ही है किन्तु पांच स्थावर एकेन्द्रिय जीवों का भी व्यर्थ विनाश नहीं करता।

अहिंसाणुव्रत के नीचे लिखे अनुसार पांच अतीचार हैं इनको टालने से व्रत निर्मल पलता है।

१– बध अतीचार— किसी को लाठी, मुक्का, हंटर आदि से मारना सो बध-अतीचार है। यहां शिक्षा के अभिप्राय से बालक, अपराधी आदि को दण्ड देना गिनती में नहीं है।

२– बन्ध अतिचार— अपनी इच्छा से जाते हुए किसी को बिना काम रोकना, बांधना कैद कर देना सो बन्ध नामक अतीचार है। यहां पर अपने पाले हुये गाय, भैंस, बैल, घोड़ा आदिको बांधना गिनतीमें नहींहै।

किन्तु उनको भी ऐसे नहीं बांधना जिससे पीड़ा हो या विशेष संकट के आने पर वे अपने आप छूट कर न भाग सकें ।

३- छेद अतिचार— नाक छेदना, हाथ पैर आदि अंग तोड़ना, बैल को बधिया करना, आदि छेदातिचार है, यहां बालक बालिकाओंके कर्ण छेदनादि गिनती में नहीं ।

४- अतिभारारोपण अतीचार— गाड़ी, घोड़ा, बैल, कुली, नौकर आदि पर प्रमाण से ज्यादा वजन लादना सो अतिभारारोपणातिचार है ।

५- अन्नपान निरोध अतिचार— अपने आधीन स्त्री, पुत्र, नौकर, पशु आदि को समय पर अन्न पानी नहीं देना आदि ।

इन ऊपर कहे हुये अतिचारों को बचाते हुये अपने अहिंसा-व्रत की वृद्धि तथा निर्मलता रखने के लिये पांच भावना हमेशा अपने मन में रखना चाहिये ।

अहिंसाणुव्रत की पांच भावनाएं

१.— मनोगुप्ति भावना— अन्यायपूर्वक विषय भोगने की इच्छा, अन्याय का धनादि ग्रहण करने की वांछा, दूसरों के अपमान, नुक्सान आदि का चिन्तवन, डाह, आदि दुष्ट संकल्प विकल्पों को त्यागना सो मनो-गुप्ति भावना है।

२- बचन गुप्ति भावना— अतिहास्य, कलह, विवाद, अपवाद-निंदा, चुगली, अभिमानादि उत्पन्न करने वाले बचन न बोलना सो बचन गुप्ति भावना है।

३— ईर्यासमिति— जिससे अपना नुक्सान व पराया घात न हो ऐसे चलना बैठना आदि, नीचे देख कर चलने का अभ्यास करना।

४- आदान निक्षेपण समिति भावना— हर एक चीजों को देख कर जीवों की रक्षा करते हुये धरना

उठाना आदि सावधानी को आदाननिक्षेपण समिति भावना कहते हैं।

५- आलोकितपान भोजन भावना-- दिन में ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा सहित भोजन करना जल पीना। ये पांच भावना अणुव्रती और महाव्रती दोनों को भाना चाहिये तभी अणुव्रत और महाव्रत की सार्थकता है।

इस प्रकार अहिंसाणुव्रत का स्वरूप हुआ, अब आगे सत्याणुव्रत का स्वरूप लिखा जाता है।

(२)

सत्याणुव्रत

कषाय भाव पूर्वक अयथार्थ बचन कहना, कठोर वचन, निन्दनीय, आदि भाषण करना सो असत्य है और ऐसे वचन कहने का त्याग करके मीठे वचन युक्त सत्य, जैसे का तैसा कहना सो सत्याणुव्रत है, और

ऐसा सत्य भी नहीं कहना जिससे किसी प्राणी का, वा धर्म का घात हो, ऐसा मौका आने पर असत्य भी सत्य के समान है।

इस व्रत के भी पांच अतिचार हैं जिनको टालने से ही सत्याणुव्रत निर्दोष कहलाता व पाला जाता है।

सत्याणुव्रत के ५ अतीचार

१-मिथ्योपदेश-शास्त्र विरुद्ध, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के विरुद्ध तथा कषाय युक्त भाषण वा उपदेश देना सो, मिथ्योपदेश, नाम का अतीचार है।

२— रहोभ्याख्यान— किसी की गुप्त बात वा चेष्टाओं को प्रगट कर देना।

३--कूटलेखक्रिया— झूठे दस्तावेज, नामे, जमा, लिख लेना, झूठी गवाही देना, झूठे शास्त्र लिखना, आदि कूटलेखक्रियातिचार है।

४— न्यासापहार— किसी की धरोहर मार देना, यदि धरोहर रखने वाला भूल जाय तो आपको याद रहते भी कम देना न्यासापहारातिचार है।

५– साकार मन्त्र भेद— किसी के चेहरे आदि की चेष्टा को देख कर उसके मनके भाव दूसरे से कह देना।

इन पांच सत्याणुव्रत के अतीचारों को टालते हुये, अपने व्रत को निर्मल रखने के लिये निम्नलिखित पांच भावनाओं को भाना चाहिये।

सत्याणुव्रत की पांच भावनाएं

१— क्रोध त्याग भावना— क्रोधी मनुष्य अपने सत्य की रक्षा नहीं कर सकता। अतएव सत्य बोलने वाला क्रोध त्यागे।

२-लोभ त्याग भावना- जिससे असत्य बोलना पड़े ऐसे लोभ का त्याग करना।

३-भय त्याग भावना-सत्यवादी सदा निडर रहता है और जो डरपोक है वह सत्यावादी नहीं है।

४- हास्य त्याग भावना—जिससे किसी का हृदय दुखे ऐसा हास्य या असुहावना हास्य न करे।

५— अनुवीचि भाषण— धर्म विरुद्ध न बोलना, ऐसी ये पांच सत्याणुव्रत की भावना है।

(३)
अचौर्याणुव्रत

कषाय भाव से किसी की वस्तु बिना दिये लेना सो चोरी है। कषाय भाव का अर्थ यहां लोभ से है पर हां, ऐसी जगह की जल और मिट्टी कि जहां किसी धनीकी रोक-टोक नहीं है वहांसे किसी की आज्ञा बिना ले सकता है।

अचौर्याणुव्रत के पांच अतीचार

१– चौर प्रयोग— आप तो बिना दिये किसी की वस्तु न लेना किन्तु दूसरों को चोरी का उपाय बताना।

२– चौरार्थादान— चोरी का माल सस्ता मिलेगा इस लोभ से ले लेना।

३– विरुद्धराज्यातिक्रम— राजा के बनाए हुये व्यापार सम्बन्धी कानूनका उल्लंघन करना, जैसे महसूल आदि न देना, छुपा कर कोई वस्तु लेना देना।

४– हीनाधिक मानोन्मान--नापने तौलने के गज, बांट, तराज़ू आदि कम-बढ़ रखना।

५– प्रतिरूपक व्यवहार— ज्यादा मोल की वस्तु में कम मूल्य वाली चीज मिला कर बेचना जैसे दूध में पानी घी में वेजीटेबल आइल मिला देना आदि। इन पांच अतीचारों को त्याग कर निम्नलिखित पांच भावनाओं को हमेशा भाना चाहिये, जिससे व्रत की निर्मलता रहे।

अचौर्याणुव्रत की पांच भावनाएं

१– शून्यागारवास— चोर व्यसनी, दुष्ट आदि के मकान मुहल्ले आदि के निवास का त्याग।

२– विमोचितावास— जिस मकान में किसी का झगड़ा आदि न होवे, वहां रहना जिससे निराकुलता पूर्वक व्रत सधे।

३– परोपरोधाकरण— किसी के गृहादि निवास स्थान में अपने रहने के लिये जबर्दस्ती नहीं करना या किसी की जगह पर अन्याय पूर्वक कब्जा नहीं करना सो परोपरोधाकरण नाम की भावना है।

४– भैक्ष्य शुद्धि – अन्याय द्रव्य प्राप्त भोजन को, तथा अभक्ष्य पदार्थों को त्याग कर खान पान की शुद्धता पूर्वक सन्तोष सहित जो प्राप्त हो कर्मोदय विचार कर उसी में शान्ति रखते हुये निर्वाह करना सो भोजन शुद्धि है।

५ – सधर्माविसंवाद भावना— साधर्मी भाइयों से लड़ाई झगड़ा, कलह, विसंवाद, तथा कषाययुक्त धार्मिक वाद विवाद भी नहीं करना सो सधर्माविसंवाद नामक अचौर्याणुव्रत की पांचवीं भावना है। इस प्रकार इन भावनाओं से व्रत निर्मल पलता है।

इस प्रकार अचौर्याणुव्रत का वर्णन समाप्त हुआ, अब आगे परम निर्मल देवताओं द्वारा पूज्य ऐसे ब्रह्मचर्याणुव्रत का वर्णन करते हैं। इस ब्रह्मचर्याणुव्रत की महान अतिशय युक्त महिमा है।

(४)

ब्रह्मचर्याणुव्रत

ब्रह्म नाम आत्मा, चर्या नाम उसमें रमण, अर्थात् अपनी आत्मा में रमण करना सो ब्रह्मचर्य है, किन्तु आत्मा में रमण तभी होता है, जब कि स्त्री मात्र का त्याग किया जावे इसका विशेष कथन तो सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा में करेंगे यहां पर अणुव्रतों का कथन चल रहा है अतएव ब्रह्मचर्य का अणुरूप यह है कि धर्म व पंचों की साक्षी पूर्वक जिससे अपना विवाह सम्बन्ध हुआ है उस स्त्री को छोड़ कर समस्त स्त्रियां, बड़ी माता, समान बहिन व लघु पुत्रीके समान, इस प्रकार जिन का भाव है और अपनी विवाहितास्त्रीमें सन्तुष्टहैं वे ब्रह्मचर्याणुव्रती हैं। यह दूसरी प्रतिमा का धारी ब्रह्मचर्याणुव्रती श्रावक स्वस्त्री का भी पर्व के दिन (अष्टमी, चतुर्दशी,

दशलक्षण अष्टान्हिका आदि) में त्याग करता है अर्थात् उक्त दिनों में ब्रह्मचर्य का साधन करता है। तथा तीर्थ स्थान व धर्म स्थानों में विषय सेवन नहीं करता। और अपनी स्त्री में भी अत्यन्त लालसा नहीं रखता।

ब्रह्मचर्याणुव्रत के पांच अतीचार

१– परविवाहकरण — अपने पुत्र, पुत्री आदि के सिवाय अन्य के पुत्र, पुत्रियों का सम्बन्ध कराना, सो ब्रह्मचर्याणुव्रत में यह अतीचार है।

२- इत्वरिका परिग्रहीतागमन— पतिसहित, व्यभिचारिणी स्त्री से सम्बन्ध रखना यह दूसरा अतीचार है।

३– इत्वरिका अपरिग्रहीतागमन-– पति रहित व्यभिचारिणी स्त्री से सम्बन्ध रखना सो तीसरा अतीचार है।

४– अनंग-क्रीड़ा— काम सेवन के अंग को छोड़ कर अन्य अंगों द्वारा काम क्रीड़ा करना सो चतुर्थ अतीचार है।

५– कामतीव्राभिनिवेश— अपनी स्त्री में भी काम सेवन की अतिलम्पटता रखना सो यह ब्रह्मचर्याणुव्रत का पांचवां अतीचार है। इस तरह इन पांच अतीचारों को त्याग करके अपने व्रत को निर्मल रखने के लिये निम्नलिखित पांच भावना अपने मनमें रखना योग्य हैं।

ब्रह्मचर्याणुव्रत की पांच भावनाएं

१-स्त्री रागकथा श्रवण त्याग— अन्य की स्त्रियों में राग उत्पन्न करने वाली कथा-वार्ता गीतादि सुनने पढ़ने का त्याग करना।

२–तन्मनोहरांग निरीक्षण त्याग—अन्य की स्त्रियों के मनोहर अंगोंको राग भावसे देखने का त्याग करना।

३– पूर्वरतानुस्मरण त्याग— पहले भोगे हुये पर-स्त्री आदि के साथ के विषय याद न करना।

४– वृष्येष्टरस त्याग— कामोद्दीपक रसायनादि का नहीं खाना। यह स्वस्त्री वाले अणुव्रती के लिये है

पूर्ण ब्रह्मचारी तथा महाव्रती तो गरिष्ठ भोजन भी नहीं करता।

५– स्वशरीरसंस्कार त्याग— कामी पुरुषों के समान अपने शरीर का शृङ्गार नहीं करना।

इस प्रकार ब्रह्मचर्याणुव्रत का स्वरूप हुआ। यदि इस अणुव्रतको स्त्रियां पालें तो उन्हें परपुरुषको, बड़ा पिता, समान भाई, छोटा पुत्रके समान समझना चाहिये आदि। आगे परिग्रह प्रमाण ५वां अणुव्रत का स्वरूप कहते हैं।

(५)

परिग्रहप्रमाणाणुव्रत

मिथ्यात्व, वेद, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और ग्लानि इन चौदह अन्तरंग परिग्रहों से यथायोग्य बचते हुये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की योग्यतानुसार क्षेत्र (खेत वगैरह) वास्तु (मकान) चांदी, सोना, धन (रुपया पैसा आदि) धान्य (गल्ला) द्विपद (दासी, दास) चतुष्पद (गाय-

बैल घोड़ा आदि) वस्त्र, बर्तन, इन दश बाह्य परिग्रहों का प्रमाण करना, तथा जितना प्रमाण किया हो उतने में सानन्द सन्तुष्ट रहना सो परिग्रहप्रमाणाणुव्रत है।

परिग्रहप्रमाणाणुव्रत के पांच अतीचार

१— प्रयोजन से अधिक सवारी रखना सो पहला अतीचार है।

२— आवश्यकीय वस्तुओं का अति संग्रह करना सो दूसरा अतीचार है।

३— दूसरों का वैभव देख कर आश्चर्य व इच्छा करना या झुरना।

४— अतिलोभ करना।

५— पशु आदि पर अधिक बोझ लादना।

परिग्रह प्रमाणव्रत की पांच भावनाएं

१— स्पर्शन इन्द्रिय के मनोज्ञ स्पर्श में राग व अमनोज्ञ स्पर्शमें द्वेष नहीं करना सो पहली भावना है।

२— रसना इन्द्रिय के मनोज्ञ रस में राग वा अमनोज्ञ रस में द्वेष नहीं करना सो दूसरी भावना है।

३— घ्राण इन्द्रिय के मनोज्ञ विषय, सुगन्धमें राग वा अमनोज्ञ विषय, दुर्गन्धमें द्वेष नहीं करना सो तीसरी भावना है।

४— चक्षु इन्द्रिय के मनोज्ञ विषय शुभ रूप में राग वा अशुभ रूप में द्वेष नहीं करना सो चतुर्थी भावना है।

५— कर्ण-इन्द्रिय के मनोज्ञ विषय, शुभ शब्दों में राग व अनमोज्ञ विषय, अशुभ शब्दों में द्वेष नहीं करना सो पांचवीं भावना है। इस प्रकार पांच अणुव्रतों के स्वरूप उनके अतीचार, भावना आदि का स्वरूप कथन किया, अब इन अणुव्रतों के उपकारी तीन गुणव्रतों का स्वरूप लिखते हैं।

तीन गुणव्रतों का स्वरूप

जो अणुव्रतों का उपकार करें वे गुणव्रत कहाते हैं अर्थात् जैसे दो, चार आदि संख्याओं को आपस में गुणा करने से वे ही संख्याएं दूनी चौगुनी हो जाती हैं इसी प्रकार यदि अणुव्रतों के साथ गुणव्रत धारण कर लिये जावें तो वे ही अणुव्रत महा-महिमा युक्त दूने चौगुने फल को देने वाले हो जाते हैं। अतएव अणुव्रतों की शोभा तभी है, जबकि उनके साथ गुणव्रत धारण किये जावैं। गुणव्रत तीन होते हैं, उनके नाम पहले लिख आये हैं उनमें पहला गुणव्रत दिग्व्रत है उसका स्वरूप इस प्रकार जानना।

(६)

पहला गुणव्रत दिग्व्रत

सांसारिक विषय कषाय व पंच पापादि सावद्ययोग की निवृत्ति के हेतु दशों दिशाओं में आवश्यकतानुसार

आने जाने की मर्यादा प्रसिद्ध चिन्हों तक आजन्म के लिये कर लेना और दश दिशाओं के अन्दर मर्यादित क्षेत्र में ही अपना व्यवहार कार्य करना सो दिग्व्रत है।

दिग्व्रत के पांच अतीचार

१ — प्रमादवश मर्यादा से अधिक ऊंचे चढ़ जाना पहाड़ आदि पर। सो दिग्व्रत का प्रथम अतीचार है।

२ — प्रमादवश मर्यादा से अधिक नीचे उतर जाना सो दूसरा अतीचार है।

३ — प्रमादवश समतल भूमि में मर्यादा से बाहर दिशा या विदिशा आदि में चले जाना सो तीसरा अतीचार है।

४ — प्रमाद वश एक बार कर ली गई क्षेत्र की प्रतिज्ञा को दुबारा बढ़ा कर मर्यादा के बाहर चले जाना सो चौथा अतीचार है।

५ — प्रमाद वश, की हुई मर्यादा को भूल जाना सो पांचवां अतीचार है। इस प्रकार दिग्व्रत का स्वरूप कहा। अब देशव्रत का स्वरूप लिखा जाता है।

(७)

द्वितीय गुणव्रत—देशव्रत

आजन्म के लिये की गई दिशा विदिशाओं की बहुत सी क्षेत्र-मर्यादा में भी प्रतिदिन या कुछ समय के लिये आवश्यकतानुसार ही क्षेत्रकी मर्यादा करते रहना सो देशव्रत है व्यवहारी गृहस्थों को देशव्रत की प्रतिज्ञा कुछ समय के लिये ही करना योग्य है।

इस देशव्रत की मर्यादा में घर, गली, गांव, बाजार आदि चिन्हों द्वारा प्रतिज्ञा, पूर्ण याददास्त से लेना चाहिये तथा दिग्व्रत में आजन्म के लिये भरत क्षेत्र या हिन्दुस्थान या सी० पी०, यू० पी० आदि के हिसाब से आवश्यकतानुसार प्रतिज्ञा करना चाहिये। इस देशव्रत के भी निम्न प्रकार पांच अतीचार हैं।

देशव्रत के पांच अतीचार

१— मर्यादा के क्षेत्र से बाहिर किसी मनुष्य या किसी पदार्थको भेजना सो प्रेषण नामक अतीचार है।

२— मर्यादा से बाहर के जीवों को शब्द द्वारा सूचना देना सो शब्दातिचार है।

३— मर्यादा से बाहर का माल मंगाना सो आनयन अतीचार है।

४— मर्यादा से बाहिर के आदमी को अपना रूप दिखा कर या इशारे से सूचना देना सो रूपाभिव्यक्ति नामक अतीचार है।

५— मर्यादा से बाहर के पुरुष या किन्हीं जीवों को कंकर पत्थर आदि फैंककर चेतावनी देना सो पुद्गल-क्षेप, नाम का अतीचार है। इस प्रकार देशव्रत का कथन हुआ।

तृतीय गुणव्रत-अनर्थ दंड त्याग

पंचाणुव्रत वा दिग्व्रत तथा देशव्रत की मर्यादा वा क्षेत्र के अन्दर भी ऐसा बिना प्रयोजन का पापारंभ नहीं करना, कि जिससे व्यर्थ कर्म का बन्ध होकर उसकी सजा स्वयं को भुगतना पड़े, सो अनर्थ दण्ड त्यागव्रत है।

अनर्थ दण्ड के पांच भेद हैं—

१– पापोदेश— पापों में प्रवृत्ति कराने वाला तथा जीवों को क्लेश पहुंचाने वाला उपदेश देना या वाणिज्य आदि हिंसा वा ठगाई की कथा करना जिससे दूसरों की पाप में प्रवृत्ति हो जाय। जैसे किसी से कहना कि बाग लगाओ, आग लगाओ, खेती व्यापार कर लो आदि पापोपदेश है।

२– हिंसादान— हिंसा के उपकरण कुल्हारी, तलवार, खंता, आग, सांकल, हंसिया, साबल, पाश, छुरी, लाठी आदि दूसरों को देना या इनका व्यापार करना, सो हिंसादान है।

३– अपध्यान— रागद्वेष वश दूसरों की हानि, लाभ, बध, बन्धन, हार, जीत का ध्यान करना सो अपध्यान अनर्थदंड है।

४–दुःश्रुति श्रवण—मिथ्यात्व, राग, द्वेष, क्रोधादि कषायों को उत्पन्न करने वाली कथा वार्ता करना, कुशास्त्रों को सुनना, किसी के लड़ाई झगड़ों में पड़ना आदि दुःश्रुति अनर्थदण्ड है।

५– प्रमादचर्या— बिना प्रयोजन फिरना, दूसरों को फिराना, स्थावरों का बिना प्रयोजन घात करना, प्रमाद चर्या है।

अनर्थदण्ड त्यागव्रत के पांच

अतीचार

१– नीच पुरुषों सरीखे भण्ड वचन बोलना, असभ्यता पूर्वक हंसी, दिल्लगी करना, कामोद्दीपक वचन कहना सो कंदर्प अतिचार है।

२– शरीर की खोटी चेष्टा भंड रूप क्रिया करना, हाथ, पांव, मुंह आदि मटकाना, चिढ़ाना आदि।

३-व्यर्थ बकवाद, वादविवाद विसंवाद आदि करना।

४-बिना विचारे मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति करना।

५– अनावश्यक भोगोपभोग की सामग्री एकत्रित करना या उसका व्यर्थ व्यवहार करना। इस प्रकार अनर्थदण्ड त्याग व्रत के स्वरूप, भेद, अतीचारादि का वर्णन हुआ।

चार शिक्षाव्रत

जिन तीन गुणव्रतों का स्वरूप कह आये हैं वे तथा आगे जिन चार शिक्षाव्रतों को कहेंगे ऐसे तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये ७ शील (या सप्तशील भी) कहलाते हैं। तथा चार शिक्षाव्रतों को शिक्षाव्रत इस लिये कहते हैं कि इन से मुनिपद की शिक्षा मिलती है।

अर्थात्— मुनिपद की शिक्षा प्राप्त करने के लिये चार शिक्षाव्रत पाले जाते हैं। इन शिक्षाव्रतों के चार भेद हैं, जिनका नाम पहले कह आये हैं। उनमें से यहां सब से पहले सामायिक नाम के शिक्षाव्रत को कहते हैं।

(६)

सामायिक-शिक्षाव्रत

दूसरी प्रतिमाका धारी, तीन काल सामायिक करने का अभ्यास करे क्योंकि जब तीसरी प्रतिमा धारण होगी तब नियमित समय पर पूर्ण विधि युक्त सामायिक करनी

होती है। सामायिक विधि आदि का विवरण हम यहां नहीं लिखते हैं। कारण कि सामायिक प्रतिमा में इसका पूर्ण विवेचन करेंगे। अतएव सामायिक प्रतिमा के स्वरूप में सामायिक विधि आदि देखकर यह व्रती श्रावक उसका अभ्यास करे, सो सामायिक शिक्षाव्रत है।

सामायिक शिक्षाव्रत के पांच अतीचार

१, २, ३-- मन, वचन, काय को अशुभ प्रवर्तना सो ये तीन अतीचार हुये।

४- सामायिक करने में अनादर करना सो चौथा अतीचार है।

५-- सामायिक का समय वा पाठ आदि भूल जाना सो पांचवां अतीचार है।

आगे प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतके विषयमें कहा जाता है।

प्रोषधोपवास-शिक्षाव्रत

प्रोषध नाम एकाशन, तथा उपवास नाम अनशनका है, अर्थात् एक माहकी दो अष्टमी व दो चतुर्दशीको आदि अन्त के दिनों में एकाशन पूर्वक उपवास करना सो प्रोषधोपवास है। व्रती श्रावक इसका अभ्यास अवश्य करै।

प्रोषधोपवास की विधि, कर्तव्य आदि का वर्णन हम चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमामें करेंगे वहां से जानना। विधिक्रिया आदि इस शिक्षाव्रतमें व उस चौथी प्रतिमामें सब एक सी हैं, सिर्फ अन्तर इतना है कि इस शिक्षाव्रत में अभ्यासरूप हैं व चौथी प्रतिमामें नियमपूर्वक कर्तव्य हैं।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के पांच

अतीचार

१– बिना देखे शोधे मन्दिर (चैत्यालय जी) के उपकरण व शास्त्र, चौकी अछार आदि ग्रहण करना सो प्रथम अतीचार है।

२–जीवों को बिना देखे शोधे मल मूत्रादि मोचन करना सो दूसरा अतीचार है।

३– बिना देखे शोधे संस्तर (बिछौना) आदि बिछाना ।

४– भूख प्यास के क्लेश से उत्साह हीन होकर उपवास में अनादर करना।

५– उपवासमें करने योग्य कर्तव्य को भूल जाना। इस प्रकार प्रोषधोपवास का स्वरूप, अतीचारादि कहे। आगे भोगोपभोग प्रमाण शिक्षाव्रत को कहते हैं।

भोगोपभोगप्रमाण शिक्षाव्रत का स्वरूप

रागादि भावों को मन्द करने के लिये परिग्रह प्रमाण अणुव्रत में की गई मर्यादा के अन्तर्गत परिग्रह (भोगोपभोग) की प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रतिज्ञा कर लेना या सत्तरह नियम करना सो भोगोपभोग प्रमाण शिक्षाव्रत है।

१— भोग उन्हें कहते हैं जो पदार्थ एक बार भोगने में आवैं, जैसे भोजनादि।

२— उपभोग पदार्थ वे हैं जो वही एक पदार्थ बार २ भोगनेमें आवै। जैसे स्त्री, सवारी, वस्त्र आदि २। इस भोगोपभोग प्रमाण शिक्षाव्रत के निम्न १७ नियम हैं।

१- भोजन, २-षट्रस, ३- जल, ४- चन्दनादि-

लेप, ५– पुष्प सुगन्ध, ६- ताम्बूल, ७- गीत, ८- नृत्य, ९– ब्रह्मचर्य, १०– स्नान, ११– आभूषण, १२– वस्त्र, १३– सवारी, १४– शैया, १५– आसन, १६– सचित्त-त्याग, १७– दिशा विदिशागमन।

इन १७ नियमों में जो पदार्थ जिस दिन जितने रखना या न रखना हो प्रति दिन या कुछ समय, पक्ष, मास आदि के लिये नियम कर लेवे, इससे भोगोपभोग प्रमाण व्रत, निर्मलता पूर्वक पलता है। इस व्रत से अतितृष्णा पर विजय होती है, आत्मशक्ति बढ़ती है।

आगे इस व्रत के पांच अतीचार कहते हैं –

भोगोपभोग प्रमाण शिक्षाव्रत के पांच

अतीचार

१— विषय भोगों में अत्यन्त प्रेम करना सो प्रथम अतीचार है।

२— पहले भोगे हुये विषयों को याद करना सो दूसरा अतीचार है।

३— वर्त्तमान भोग भोगनेमें अति लम्पटता रखना सो तीसरा अतीचार है।

४— भविष्य में भोगों की प्राप्ति की आकांक्षा रखना।

५— हमेशा अपना ध्यान विषयोंकी ओर रखना। ये पांच अतीचार भोगोपभोग प्रमाण शिक्षाव्रत के हैं इन्हें त्यागना चाहिये।

(१२)

अतिथि-संविभाग
शिक्षाव्रत

अपने रत्नत्रय धर्म की वृद्धि के लिये, उत्तमपात्र मुनि आदि को नवधा भक्ति पूर्वक आहारादि दान देना, तथा मध्यम पात्र व्रती श्रावकों को व जघन्यपात्र अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावकों को या चार संघ को आहार, औषधि, अभय तथा ज्ञान इस प्रकार चार प्रकार का दान हमेशा देना वा दान देने की भावना रखना सो अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत है।

स्व- पर कल्याण के लिये द्रव्य का देना 'दान' है इसका दूसरा नाम 'दत्ति' भी है। इसके चार भेद हैं-

१- पात्रदत्ति, २- दयादत्ति, ३- अन्वयदत्ति, ४- समदत्ति।

मुनि, ऐलक, क्षुल्लक आदि धर्म पात्रों को भक्ति से दान देना 'पात्रदत्ति' है।

दीन, दरिद्री, अनाथ, विधवा आदि की रक्षा के लिये दया से दान करना 'दयादत्ति' है।

अपने पुत्र, भतीजे, पुत्री आदि अपने सम्बन्धी को धन सम्पत्ति का देना 'अन्वयदत्ति' है।

अपने साधर्मी भाइयों को कन्या देना, जीमनवार कराना आदि 'समदत्ति' है।

पात्रदत्ति, दयादत्ति परमार्थ रूप में हैं और अन्वयदत्ति, समदत्ति व्यावहारिक हैं।

पात्र तीन प्रकार के हैं—

१– उत्तम, २– मध्यम, ३– जघन्य।

महाव्रतधारी मुनि उत्तम पात्र हैं।

प्रतिमाधारी श्रावक मध्यम पात्र हैं।

व्रतरहित सम्यग्दृष्टी श्रावक जघन्य पात्र हैं।

उत्तम पात्र के भी उत्तम, मध्यम और जघन्य ये तीन भेद हैं।

महाव्रती तीर्थङ्कर (छद्मस्थ अवस्था में) उत्तमोत्तम पात्र हैं।।

ऋद्धिधारक मुनि मध्यम उत्तम पात्र हैं।

अन्य सामान्य मुनि जघन्य-उत्तम पात्र हैं।

मध्यम पात्र के भी उत्तम, मध्यम, जघन्य ये तीन भेद हैं।

आर्यिका तथा दशवीं, ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक उत्तम मध्यम पात्र हैं।

सातवीं, आठवीं, नौवीं, प्रतिमाधारक श्रावक मध्यम मध्यम पात्र हैं।

पहली प्रतिमा से छठी प्रतिमा तक वाले श्रावक जघन्य मध्यम पात्र हैं।

जघन्य पात्र भी उत्तम, मध्यम, जघन्य के भेद से तीन तरह के होते हैं।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि (व्रतरहित) उत्तम जघन्यपात्र है।

व्रतरहित उपशम सम्यग्दृष्टि मध्यम जघन्यपात्र हैं।

क्षयोपशम सम्यक्त्वी (अव्रती) जघन्य जघन्य पात्र है

अतिथि संविभाग व्रतमें मुख्यता 'पात्र दान की है।

अब हम चार प्रकार के दानों में पहले आहार दान की विधि लिखते हैं। अनन्तर औषधि, अभय, ज्ञान इनका भी वर्णन करेंगे। पात्र की परीक्षा आदि शास्त्रानुसार प्रसिद्ध है तदनुसार सुपात्र को ही दान देवे। दान देने के पहले, श्रावक को सर्व प्रथम चौका शुद्धि (रसोई घर की पवित्रता) तथा अपने कर्तव्यों का निम्न प्रकार मनन करना चाहिये तभी दान देना सार्थक है।

❋ चौका शुद्धि ❋

चौका नाम चार का है अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की जहां शुद्धि हो, वही चौका है। चौका शुद्धि का विशेष स्वरूप इस प्रकार है—

१- द्रव्य-शुद्धि— अर्थात् खान पान के पदार्थ जैसा कि पहली प्रतिमा में वर्णन कर आये हैं उस तरह मर्यादित व शुद्ध हों, तथा रसोई घर में जितने भी द्रव्यों

का काम पड़े वे सब शोधे हुये पवित्र हों, जैसे लकड़ी, कंडा, वर्तन, वस्त्र, चूल्हा, शाक, भाजी आदि को यत्न पूर्वक शोधले तथा अपना शरीर रूपी द्रव्य को भी पवित्र करके अर्थात् स्नानादि करके पवित्र वस्त्र पहिन कर रसोई बनावै। इत्यादि, इस प्रकार रसोई घर के समस्त द्रव्यों की पवित्रता रखना सो द्रव्य-शुद्धि है।

२- क्षेत्र-शुद्धि— अर्थात् रसोई घर जहां पर हो वहां पर गड़बड़ व अपवित्रता न हो, रसोई सम्बन्धी सामान के सिवाय जहां दूसरा सामान न हो। रसोई घर की जगह मैली कुचैली न हो। साफ स्वच्छ, पवित्र व प्रकाशमय स्थान हो, और जहां अन्य मनुष्य व पशु आदि न आ जा सकें, ऐसे स्थान पर भोजनालय हो सो दूसरी क्षेत्र शुद्धि है।

३- काल-शुद्धि— दिन में ही वा भोजन के समय पर ही पात्रों को आहार देवै व स्वयं भी ठीक समय पर भोजन करै। अंधेरे में रात्रि में वा कुसमय में भोजन न करना, न कराना, सो काल शुद्धि है।

४– भाव–शुद्धि— दातार श्रावक अपने भावों को शुद्ध करके दान देवै व पात्र अपने भावों को शुद्ध करके दान ग्रहण करै सो भाव–शुद्धि है, बिना भाव–शुद्धि के दातार व पात्र की शोभा नहीं।

इस तरह उक्त चार तरह की शुद्धि पर विचार कर के फिर दातार श्रावक दान देवै।

दातार के पांच भूषण

१— आनन्द पूर्वक दान देना।

२— आदर पूर्वक दान देना।

३— प्रिय मीठे वचन पूर्वक दान देना।

४— निर्मल भाव पूर्वक दान देना।

५— दान देकर अपना धन्य अहोभाग्य समझना।

इस प्रकार उक्त पांच भूषण सहित होकर दान देवै,

—: दातार के पांच दूषण :—

१— विलम्ब (देरी से) दान देना।

२— उदास होकर दान देना।

३— दुर्वचन कह कर दान देना।

४— निरादर पूर्वक दान देना।

५— दान दिये पीछे पछताना।

इस प्रकार ये उक्त पांच दूषणों को त्याग कर दान देना योग्य है।

दातार के सात गुण

१– श्रद्धा— जिसे दान देवै उस पर विश्वास करै।

२– भक्ति— अत्यन्त प्रेम पूर्वक पात्रों को दान देना।

३– शक्ति— प्रमाद रहित होकर दान देना।

४– विवेक— दान की पद्धति भली भान्ति जान लेना।

५– अलुब्धता— निर्लोभपने से दान देना।

६– क्षमा— सहनशील होकर दान देना।

७– त्याग— सहर्ष, सन्तुष्ट होकर भले प्रकार दान देना

इस प्रकार ये सात गुण दातार को, अच्छी तरह ग्रहण करके दान देना योग्य है।

❀ नवधा-भक्ति ❀

मुनि तथा क्षुल्लक वा ऐलक आदि पात्रों को निम्न नवधा भक्ति पूर्वक दान देना चाहिये।

१- पड़िगाहना— द्वारापेखण करते हुये मंगल कलश आदि हाथ में लेकर उक्त पात्रों के पधारने पर हे स्वामिन् ! नमोऽस्तु ३, अत्र तिष्ठ ३. आहार जल शुद्ध है, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि। हे स्वामिन् भोजनशाला में प्रवेश कीजिये, इस प्रकार कहकर भोजनशाला में पात्र को भक्तिपूर्वक ले जाना सो पहिली पड़िगाहना-भक्ति है।

२- उच्च स्थानासन-- भोजनशाला में ले जाकर ऊंची चौकी आदि पर विराजमान करना (चौका के बाहर ही उच्च स्थान पर विराजमान करके चरण धौवें)

३- पादोदक— बड़े प्रेम से चरण धो कर मस्तक पर चरणोदक विनय करै ।

४- अर्चन— आरती आदि द्वारा श्रद्धाञ्जलि अर्पण करै ।

५- प्रणाम— नमस्कार करै ।

६- मनशुद्धि— मन को संकल्प, विकल्प रहित-स्थिर व शुद्ध रखे ।

७- वचन शुद्धि— बचन की पवित्रता रखै, गड़बड़ शब्द न आप कहे न औरों को कहने देवै ।

८- कायशुद्धि— स्नानादि कर के पवित्र वस्त्र युक्त हो ।

६- एषणशुद्धि— उक्त चौका के बाहर करने योग्य समस्त क्रियाओं को करके फिर चौका में ले जाकर शुद्ध (पवित्र) आहार शान्ति पूर्वक देना सो एषण-शुद्धि है। श्री मुनिराज खड़े २ हाथोंमें ही आहार लेते हैं तथा ऐलक महाराज बैठ कर हाथों में आहार लेते हैं।

और क्षुल्लक महाराज बैठ कर पात्र में (कटोरी में) आहार लेते हैं। जैसे पात्र का सामागम हो वैसी व्यवस्था कर लेनी चाहिये। तथा पात्रों के आहार समय भीड़भाड़ अशान्ति बिलकुल न हो इसका पूर्ण खयाल रखना चाहिये।

पात्रों का कर्तव्य

यहां 'श्रावक-स्वरूप' का ही प्रकरण है, अतएव पात्रों के कर्तव्य का ज्ञान पात्रों को अन्य चारित्र-ग्रन्थों से अवश्य जान लेना चाहिये, और बत्तीस अन्तराय टाल कर छयालीस दोष रहित आहार जिस श्रावक के यहां प्राप्त हों; करना चाहिये।

दान देते समय श्रावक के ध्यान देने योग्य बातें

चौके में, तथा पानी के स्थान पर व चक्की उखली आदि के स्थान पर ऊपर कपड़े आदि की चांदनी अवश्य हो।

२- दान देने के पूर्व ही रसोई बन जावे, पात्र को चूल्हा जलने न मिले बल्कि चूल्हे के ऊपर वा सामने तवा वगैरह कोई बर्तन ढांक देवै।

३–कोई भी सामान सावधानी से उठावे, धरे। पटके नहीं।

४–अपवित्र पदार्थ, अभक्ष्य पदार्थ आदि अपने घर में पात्र के आते समय न हों।

५–वस्त्रों का उपयोग जहां तक हो सफेद, धुले हुये, शुद्ध व साफ हों।

६–दान देते समय दान देने में ही ध्यान होना चाहिये। अन्य काम की विचूचन या दौड़ रूप में नहीं रहे।

७–भोजन के अनन्तर उपदेश श्रवण करे। तथा पात्र को शास्त्र, पीछी, कमंडलु व योग्य आवश्यकीय सामान की जो पूर्ति कर सके सो अवश्य पूर्ति करे।

अन्य दानों का स्वरूप

१–पात्रों को कोई पीड़ा या रोगादि के होने पर

औषधि आदि द्वारा वैयावृत करना सो औषधि दान दान है।

२-पात्रों के ठहरने आदि के लिये योग्य वसतिका आदि का प्रबन्ध करना अभय दान है।

३ पात्रों को आवश्यक शास्त्र आदि देना ज्ञान है।

४-आहार दान का स्वरूप ऊपर लिख ही चुके हैं।

इस प्रकार अपनी शक्ति अनुसार उक्त पात्रों को वा और भी हर जगह विचार कपूर्व जहां भी चार दान देने की आवश्यकता हो, दान देकर अपने धर्म की बढ़वारी करे।

अतिथि संविभाग व्रत के पांच —अतिचार—

१-दान के पदार्थ हरे पत्तों में रखे।

२-हरे पत्ते ऊपर से ढांके।

३–अनादर से दान देवे।

४–दान की विधि भूल जावे।

५–मलिन भाव रखे।

इस प्रकार उपर्युक्त पांच बातों (अतीचारों) को त्याग कर दान देवे।

इस प्रकार दूसरी प्रतिमा के १२ व्रतों को कह कर अब इस दूसरी प्रतिमा धारी श्रावक को और क्या २ करना चाहिये सो कहते हैं—

सात जगह मौन

१–भोजन समय, २–स्नान समय, ३–मलमोचन समय, ४–मैथुन समय, ५–वमन समय, ६–सामायिक समय, ७–भावपूजन वा प्रार्थना समय।

इन उपर्युक्त सात कामों के करते समय मौन रखे तथा भोजन समय के निम्न अन्तराय टाले—

व्रती श्रावक को भोजन समय टालने योग्य अन्तराय—

देखने के दस (१०) अन्तराय—

१-गीला चमड़ा दिखे तो भोजन त्यागना, २-हड्डी, ३-मांस, ४-चार अंगुल रक्तकी धार, ५-मदिरा, ६-विष्ठा, ७-जीव हिंसा, ८-गीली पीव, ९-बड़ा पंचेन्द्रिय मृतक पशु, १०-मूत्र।

ये देखने के दश अन्तराय हुये।

स्पर्श के दश अन्तराय—

१-चमड़ा, २-पंचेन्द्रिय बड़ा पशु (जीवित भी छू जावे तो), ३-अव्रती भ्रष्ट पुरुष, ४-रजस्वला, ५-बाल, ६-पंख, ७-नख, ८-शूद्र, ९-मक्खी आदि मर जावे व १०-मरे हुये छोटे बड़े जीव छू जावें तो भोजन त्यागे।

सुनने के पन्द्रह अन्तराय—

१- मांस, २-मदिरा, ३-अस्थि, ४-मरण, ५-अग्नि लगना, ६-अति कठोर शब्द, ७-रोने आदि के

करुणा जनक शब्द, ८--स्वचक्र परचक्र गमन, ९--रोग पीड़ा का शब्द, १०--धर्मात्मा पर उपसर्ग, ११--मरण की आवाज, १२--छिदने, भिदने, कटने की आवाज, १३--चाण्डाल का शब्द, १४--धर्म के अविनय का शब्द, १५--फांसी आदि का शब्द।

इन उपर्युक्त सुनने के १५ अन्तरायों को भोजन समय श्रवण होते ही व्रती श्रावक भोजन त्याग देवे।

मनके संकल्प के अन्तराय—

मल मूत्र शंका या और कोई आर्त रौद्र आदि के खोटे संकल्प होने पर अन्तराय मान कर भोजन त्याग देवे। तथा त्यागा हुआ पदार्थ भोजन में आवे तो भोजन त्यागे। इस प्रकार देखने के १०, सुनने के १५, छूने के १० तथा मन का १, त्यागा हुआ पदार्थ १। ऐसे कुल ३७ अन्तराय व्रती श्रावक को अपने व्रतों की रक्षार्थ भोजन समय टालना चाहिये। तथा रात का बना, बासा, भोजन व पंगति (ज्योनारों) में नहीं जीमना, क्योंकि वहां मर्यादित पदार्थों का व

सावधानी का अभाव है। और विशेष विचार अपने विवेक से कर लेवे।

पानी का विचार

जहां तक हो अपने हाथ का या जैनी के हाथ का पानी पीवे यदि ऐसा योग न मिले और अपनी इच्छा झेले तो तीन मकार त्यागी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के हाथ का पानी लेवे, शूद्र के हाथ का जल बिलकुल त्यागे। नल का पानी भी त्यागे।

घी का विचार

जहां तक हो अपने आप अपने खाने का मर्यादित शुद्ध घी बनावे। ऐसा न हो तो अन्य जैनी के यहां का बना हुआ शुद्ध घी लेवे। यदि ऐसा भी न मिले और अपनी इच्छा झेले तो मकार त्यागी उच्च वर्ण

के गृहस्थों के यहां से शुद्ध घी अपने खाने के लिये प्राप्त करे। किन्तु क्षुल्लक आदि पात्रों को ऐसा घी दान में प्रयोग न करे चाहे बिना घी का आहार भले ही करा देवे।

व्रती श्रावक को और भी ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि वह कोई भी ऐसा व्यापार, व्यवहार न करे जिसमें उसके किसी व्रत का भंग हो या अतीचार लगे। बल्कि अपने व्रतों की अपने प्राणों से भी अधिक रक्षा करने का ध्यान रखे।

प्रायश्चित्त

अपने व्रत--नियमों में किसी प्रकार के प्रमाद या अज्ञानवश लगे हुये दोषों का गुरु आदि के समीप योग्य प्रायश्चित्त करे। जान बूझ के लगे दोषों की छेदोप--स्थापना करे अर्थात फिर से उस व्रत की दीक्षा लेवे।

इस प्रकार इस दूसरी प्रतिमा का स्वरूप यहां

आगमानुकूल लिखा है। किसी तरह की कमी रही हो तो अनुभवी सज्जन पूरी कर लें, कुछ ज्यादा या त्रुटिपूर्ण हो तो सुधार कर क्षमा करें। तथा इस प्रतिमा को वे ही धारण करें जिन्हें आत्म--कल्याण की लगन हो, व जिनके हृदय में उत्साह हो, किसी की जबर्दस्ती या देखा देखी तथा ख्याति लाभ, बड़ाई आदि की इच्छा से इस प्रतिमा को या किसी भी प्रतिमा को धारण न करे। तथा अपनी शक्ति, द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव तथा अपनी योग्यता को देख कर प्रतिमा धारण करे। और धारण कर लेने के बाद जी जान से प्रेम--पूर्वक मरण पर्यन्त निभावे, हमेशह सावधान रहे किसी भी व्रत में दोष न लगे। यदि अज्ञानता--वश दोष लगे तो प्रायश्चित्त लेवे। किन्तु व्रतों को या प्रतिमा को ग्रहण करके बिलकुल छोड़ देना इसका क्या प्राय--श्चित्त हो सकता है, वह तो भ्रष्ट ही है।

अतएव अपनी शक्ति को व्रत धारण करने के पूर्व ही समझ लेवे।

समाधिमरण

·>>❋<<·

व्रतों की सफलता के हेतु मरण समय समाधिपूर्वक प्राण त्यागे या किसी उपसर्ग आदि के आने पर समाधि मरण धारण करे। कषायों को तथा शरीर को कृष करते हुये क्रमशः चार प्रकार के आहारों का त्याग करते हुये अन्त समय समस्त सावद्य योग का त्याग करके समता भाव रखे और पहले से ही अपना ऐसा साधर्मी सज्जन आदि का योग मिला कर रखे जो मरण समय सहकारी हो।

तथा साधर्मी सज्जनों का भी कर्तव्य है कि मरणोन्मुख व्रती यदि जाप, पाठ आदि करने में असमर्थ हो तो आप उसे णमोकार मंत्र या अन्य समाधि मरण पाठादि सुना कर उसके नर-जन्म को सफल कर दें। तथा अन्त समय मोही जीवों द्वारा व्रती का व्रत-भंग न हो इसका ख्याल रखना और समाधिमरण-पाठ,

बारह भावना, बाईस--परीषह, छहढाला तथा अन्य स्तुति, पाठ, स्तोत्र व वैराग्य--वर्धक पद तथा जिनवाणी का पाठ आदि सुनाना चाहिये, जिससे मरणोन्मुख व्रती के परिणाम दृढ़ रहें और साधर्मी जन यह भी ख्याल रखें कि व्रती के कुटुम्बी जन मरण समय मोह-वश रुदन आदि करके व्रती को मोहित न करें, उन्हें शान्ति पूर्वक मृतक आत्मा को अपने घर से विदागिरी करना चाहिये, पर-भव में जाते हुये आत्मा के गमन समय किसी प्रकार का भी अपशकुन न हो इसका खूब ख्याल रखें।

इस प्रकार दूसरों के समाधिमरण समय आप शुभ सहयोग देकर यदि पुण्यबंध कर लेंगे तो आपको भी मरण समय ऐसा ही अलभ्य लाभ प्राप्त होगा।

मरण के बाद

व्रती पुरुष मरण के बाद बहुत शीघ्र अग्नि संस्कार

द्वारा संस्कारित कर देना चाहिये, क्योंकि अधिक समय में उस मृतक शरीर में अनन्त सम्मूर्छन जीवों की उत्पत्ति सम्भावित है। अतएव अग्निसंस्कार जल्दी कर देने से उतने जीवों की हिंसा बच जावेगी। बाकी क्रियाएं अपने कुलक्रम तथा शास्त्रानुसार होती ही हैं, उनका वर्णन करके हम इस ग्रन्थ को बढ़ाना नहीं चाहते।

सावधान

दूसरी प्रतिमाका धारी व्रतीश्रावक तीसरी सामायिक प्रतिमा का अभ्यास अवश्य करे, तभी दूसरी प्रतिमा की पूर्ण निर्मलता है। अब आगे सामायिक प्रतिमाका स्वरूप लिखा जाता है।

।। इति द्वितीय प्रतिमा का स्वरूप समाप्त ।।

तीसरी-सामायिक प्रतिमा

तीसरी सामायिक प्रतिमा

—का—

—स्वरूप—

जब पहली और दूसरी प्रतिमा को पालन करते हुये आत्मा के परिणाम केवल आत्महित करने में ही रहने लगते हैं तब उत्तरोत्तर समता भावों की प्राप्ति करने के लिये दूसरी प्रतिमा का धारी व्रती श्रावक तीसरी सामायिक प्रतिमा को धारण करके अपना नर-जन्म सफल करता है। इस सामायिक प्रतिमा में तीन काल सामायिक तो की ही जाती है, किन्तु इस प्रतिमा-धारी की बड़ी शान्त मुद्रा हो जाती है। अर्थात् वह साक्षात् सामायिक की मूर्ति (प्रतिमा) प्रतीत होता है, २४ घंटे उसकी वृत्ति शान्त रहती है। वह कभी

अशान्त रूप में नहीं दिखता। सामायिक की विधि इस प्रकार है--

सर्व प्रथम द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, आसन, विनय तथा मन, वचन, काय आदि की शुद्धि पर विचार कर लेवे। अर्थात—अपने मन, वचन, को शुद्ध करके पवित्र शरीर में वस्त्रादि शुद्ध पहिन करके एकान्त स्थान में विनय भाव सहित, सर्व आरम्भ परिग्रहादि का त्याग करके सामायिक में जितने वस्त्र व सामान की आवश्यकता हो उतना रखे बाकी का त्याग करे, तथा सामायिक का ठीक समय प्रारम्भ होते ही अपनी सामायिक प्रारम्भ कर दे। तथा जिस आसन से सामायिक करना हो नियम करे।

याद रहे सामायिक करने का समय ठीक-सूर्योदय, सूर्यास्त तथा मध्यान्ह की बेला के यदि उत्कृष्ट सामायिक करना है तो तीन तीन घड़ी आदि अन्त की लेवे, तथा मध्यम सामायिक करना हो तो दो दो घड़ी सूर्योदयादि के आदि अन्त की लेवे, यदि जघन्य सामायिक

करना है तो सूर्योदय सूर्यास्त तथा मध्यान्ह को ठीक मध्य में लेते हुये आदि अन्त की एक एक घड़ी लेवे। इस प्रकार उत्कृष्ट सामायिक छह घड़ी, मध्यम चार घड़ी, तथा जघन्य २ घड़ी (४८ मिनिट) की होती है। अब सामायिक का प्रारम्भ किस प्रकार करे सो आगे लिखा जाता है।

सामायिक-प्रारम्भ

पहले पूर्व दिशा की ओर अपना मुख करके खड़ा हो, खड़े होने वक्त अपने पैरों के पंजों के बीच में कुछ अन्तर अवश्य रखे, जिससे कोई जीव यदि आ जावे तो निर्विघ्न निकल जावे। इस प्रकार समताभाव युक्त सावधानी से खड़ा हो, नौ बार शुद्ध इस तरह णमोकार मन्त्रराज को पढ़े—

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं।
णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं॥

णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

इस प्रकार यह मन्त्र पढ़ कर उसी पूर्व दिशा की ओर साष्टांग नमस्कार करे। पुनः खड़ा हो उसी पूर्व दिशा की ओर तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़ कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करे पश्चात् दक्षिण दिशा की ओर तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़ कर तीन आवर्त एक शिरोनति करे इसी प्रकार पश्चिम व उत्तर की तरफ भी तीन तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़कर तीन तीन आवर्त और एक एक शिरोनति करे, पश्चात् पुनः पूर्व दिशा की ओर मुंह करके पद्मासन से बैठ जावे और स्तुति, वंदना प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान वा सामायिक इन सामायिक छह अंगों को पूर्ण करने के लिये जिसमें इन छहों अंगों का वर्णन हो, उस सामायिक पाठ का बड़े प्रेम से मनन करे। उसके बाद णमोकार मन्त्र या जिस मन्त्र की जाप जितनी करनी हो करे या आत्मा का ध्यान पिण्डस्थादि ध्यानों द्वारा बने तो करे, न बने तो अभ्यास करे। अथवा बारह भावनाओं का

चिन्तवन करे। भावनाओं का संक्षेप स्वरूप नीचे लिखे अनुसार है।

—भावना—

जिस प्रकार सोने को बार बार अग्नि की भावना देने से सोना शुद्ध होता जाता है उसी तरह आत्मा भी जिन विचारों के बार बार भाने पर राग द्वेषादि मैलों से शुद्ध होता है उन्हें भावना या अनुप्रेक्षा कहते हैं। भावनाओं के भाने से संसार, शरीर और विषय भोगोंसे विरक्ति होती है, शान्त आत्मरसका स्वाद आता है। इस कारण सामायिक के समय भावनाओं द्वारा मानसिक वृत्ति को शुद्ध बनाना चाहिये।

भावना बारह हैं—

१-अनित्य, २-अशरण, ३-संसार, ४-एकत्व, ५-अन्यत्व, ६-अशुचि, ७-आस्रव, ८-संवर, ९-निर्जरा, १०-लोक, ११-बोधिदुर्लभ, १२-धर्म।

अनित्य-भावना

—१—

हम जिन चीजों को देख कर फूले नहीं समाते संसार की वे सब वस्तुऐं सदा कायम नहीं रहतीं, कभी उत्पन्न होती हैं तो कुछ दिन बाद नष्ट हो जाती हैं। जो मनुष्य आज अपने पुण्योदय से मिले वैभव पर अपने आपको भूल जाते हैं कल वे ही पाप कर्म के चक्कर में आकर दर दर के भिखारी देखे जाते हैं।

विहार प्रान्त में १५ जनवरी सन १६३४ के दिन समस्त स्त्री पुरुष आनन्द से अपना अपना कार्य कर रहे थे कि दोपहर के दो बजे ऐसा भयानक भूकम्प आया कि हजारों आदमी जहां के तहां दब कर मर गये। क्वेटा नगर में ३० मई सन १६३५ की रात को लोग आनन्द से सो रहे थे कि रात को सवा दो बजे ऐसा भूचाल हुआ कि तमाम क्वेटा जमीनमें मिल गया और

लोग सदा के लिये सो गये, बहुत से तड़प २ कर मरे। जिन्होंने रात को हजारों लाखों रुपये की रोकड़ जमा की थी सवेरे वे भीख मांग कर पेट भरने लायक हो गये। मनुष्य जिस यौवन के घमंड में निर्बलों को सताता हुआ नहीं चूकता मृत्यु का अथवा बुढ़ापे का थपेड़ा उसके यौवन को कुछ समय में ही धूल में मिला देता है। भीम, भीष्म, द्रोण, कर्ण, अर्जुन, कृष्ण, हनुमान, लक्ष्मण सरीखे धीर, वीर भी न रहे, बड़े बड़े प्रतापी चक्रवर्ती राजा भी कुछ दिन अपनी लीला दिखा कर मृत्यु का डंका बजते ही यहां एक मिनट न ठहर सके तो साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या है। जिस तरह जंगल में सिंह के पंजे में आये हुये हिरण का बचना असंभव है इसी तरह मृत्यु के मुख से संसारी जीव का बचना भी असंभव है। इन्द्र, धरणीन्द्र भी अपनी आयु समाप्त होते एक क्षण भी नहीं रह सकते। इस प्रकार अनित्यता का विचार करना 'अनित्य-भावना है।

अशरण-भावना

—२—

मनुष्य अपनी रक्षा के लिये हजारों उपाय करते हैं, बड़े बड़े मजबूत अभेद्य किले बनवाते हैं, तलघर (जमीन के भीतर मकान) बनाते हैं, बड़े बलवान, शूरवीर सैनिकों का पहरा लगाते हैं, अच्छे से अच्छे वैद्य का प्रबन्ध रखते हैं किन्तु सब व्यर्थ; मृत्यु के पंजे से कोई भी नहीं छुड़ा सकता। कोट, किला, तलघर शत्रु के आक्रमण से तो रक्षा कर सकता है किन्तु मृत्यु के आक्रमण से अभेद्य किले भी मनुष्य को क्षणमात्र नहीं बचा सकते। मनुष्य भयानक पशुओं सिंह, हाथी आदि को जीत सकता है, देवों को अपना दास बना सकता है किन्तु मृत्यु से अपने आपको नहीं बचा सकता। स्वयं देव, इन्द्र, धरणीन्द्र, नारायण, चक्रवर्ती अपने आपको काल के मुख से नहीं बचा सकते, दूसरों की रक्षा ता वे क्या कर सकेंगे। धन्वन्तरि वैद्य,

लुकमान हकीम की अव्यर्थ औषधियां भी अन्य किसी को तथा स्वयं उनको मौत से न बचा सकीं। इस लिये संसार में यथार्थ रक्षक (शरण) कोई नहीं है। ऐसा विचार करना अशरण भावना है।

संसार भावना

—३—

इस चार गति रूप संसार में कर्म-बन्धन से बन्धा हुआ यह कैदी जीव कर्मानुसार अनेक रूप धारण करता है किन्तु इसको शान्ति कहीं नहीं मिलती है।

नरक तो दुखरूप है ही, आयु भर भूख, प्यास, गर्मी, शर्दी, मार काट आदि के दुःखों से नारकी जीवों का पीछा नहीं छूटता, वे मरना चाहते हैं किन्तु आयु समाप्ति के पहले मर भी नहीं सकते।

पशु गति में चार इन्द्रिय तक के कीड़े मकोड़े आदि

जीव तथा असैनी पंचेन्द्रिय ज्ञान की कमी से अनेक तरह के दुख पाते हैं उन्हें कुछ हिताहित का ज्ञान ही नहीं होता, सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च भी या तो सिंह, हिरण, चूहा, बिल्ली आदि के रूप में एक दूसरे को मारते काटते रहते हैं, अथवा दुष्ट मनुष्यों के शिकार होते हैं या मनुष्य के काबू में आकर बन्धन, ताड़न मारण, भूख प्यास, अधिक भार ढोने आदि का दुख उठाते हैं, अपनी माता बहिन आदि का जिन्हें ज्ञान नहीं होता। इस तरह पशु गति के कष्ट भी असंख्य हैं।

देवगति यों तो सुख रूप दीखती है किन्तु वहां भी स्वामी, दास का सवाल मौजूद है वहां भी ऊंच नीच, कम वैभव, अधिक वैभव की समस्या पाई जाती है। कोई देव इन्द्रासन पर बैठा हुआ शासन करता है, कोई उसकी सेवा करता है, कोई उसकी सवारी के लिये हाथी बन जाता है, बहुत से देव ऐसे नीच हैं जो इन्द्र की सभा में घुस नहीं पाते, इन्द्र भी इन्द्रासन पर सदा नहीं बैठा रहता मृत्यु का चाबुक उसे भी हन्टर मार कर

इन्द्रासन से धकेल देता है। आत्मकल्याण तो देव कर ही नहीं पाते। अतः देवगति भी वास्तविक शांति से दूर हैं।

मनुष्यभव में भी कोई सुखी नहीं दीखता। कोई निर्धन है तो गरीबी से अनेक दुख, अपमान, वेदना, सहता है, कोई धनिक है तो लेने देने, कमाने, धन की रक्षा करने आदि की चिन्ताओं से शान्ति नहीं पाता, सदा निन्यानवे के फेर में तेली के कोल्हू का बैल बना रहता है, दरिद्र के घर इतनी सन्तानें हैं कि उनका वह पालन पोषण नहीं कर पाता, किसी धनिक के घर एक भी सन्तान नहीं उसे पुत्र की पैदायश की चिन्ता व्याकुल बनाये रहती है। बहुत से धन कुबेर ऐसे भी हैं जो चारपाई पर पड़े पड़े वैद्य डाक्टरों की जेबें भरते रहते हैं करोड़ों रुपये की सम्पत्ति होने पर भी जिन्हें सिर्फ मूंग की दाल का पानी पीने के लिये मिलता है। किसी का पुत्र कुपुत्र है, किसी की लड़की विधवा है, किसी की स्त्री व्यभिचारिणी है, किसी का भाई जान लेने के लिये

घातमें बैठा है, किसी को कोई मानसिक दुख है, किसीको शारीरिक दुख है, किसी को कुछ, तो किसी को कुछ। सारांश यह है कि संसारके रंग में रंगा हुआ जीव कहीं भी सुख शान्ति नहीं पाता है, कोई न कोई आकुलता सदा उस जीव के ऊपर सवार रहती है।

ऐसा विचार करना 'संसार भावना' है।

एकत्व-भावना

—४—

मोहवश संसारी जीव ने अपना परिवार तो बहुत कुछ बना रक्खा है अनेक तरह के सम्बन्धों, रिश्तों का का जाल फैला कर अनेक जीवों को उस रिश्ते में फंसा रक्खा है। कोई पुत्र बना बैठा है, कोई पिता है, कोई माता है, कोई पत्नी है, कोई मित्र है। किन्तु ये सब सम्बन्ध या रिश्तेदारियां केवल स्वार्थ-साधन का ढंग हैं। सुख के साथी सब बन जाते हैं जिनके साथ कोई

सम्बन्ध नहीं वे भी कोई न कोई सम्बन्ध निकालकर अपना मतलब बनाने आ जाते हैं। परन्तु यदि अशुभ कर्म के उदय से दुख आ जावे तो सब नौ दो ग्यारह हो जाते हैं फिर पास कोई नहीं आता। सगे पुत्र, पत्नी, माता, भ्राता आदि भी आंखें फेर लेते हैं, सास कह देती है कि यह मेरा जमाई नहीं है, दरिद्र अवस्था में सगा भाई भी उसे अपना साला नहीं बनाता।

सच बात तो यह है कि यह जीव अकेला अपने नये शरीर में आता है और परलोक यात्रा भी अकेला करता है तथा शुभ कर्म के उदय से सुख भी अकेला भोगता है यदि माता, भ्राता, पुत्र, पत्नी आदि के अशुभ कर्म का उदय है तो उसके सुख से वे भी लाभ नहीं उठा सकते। इसी तरह अशुभ कर्म के चक्कर में पड़ कर दुख भी आप अकेला ही सहता है। दान, सेवा, धर्म आदि पुण्य करके स्वर्ग भी अकेला हो जाता है किसी माता, पिता, पुत्र, पत्नी आदि को साथ नहीं ले जा सकता और जिस परिवार के पालन पोषण के

लिये अनेक तरह के प्रपंच करता है पाप कर्म के उदय से यदि नरक जाता है तो भी अकेला ही जाता है और कोई साथ नहीं जाता। तथा मुक्त भी अकेला ही होता है।

इस प्रकार विचार करना 'एकत्व' भावना है।

अन्यत्व भावना

—५—

यह जगत दो प्रकार के पदार्थों का समुदाय है। १-जड़, २-चेतन। दोनों तरह के पदार्थों का स्वभाव भिन्न भिन्न तरह का है। जीव का चैतन्य स्वभाव जड़ में नहीं आ सकता और जड़ पदार्थों की जड़ता चेतन जीव में नहीं आ सकती इस प्रकार दोनों पदार्थ जुदे जुदे हैं। अनादि कालीन कर्मबन्धन के कारण जीव के साथ पुद्गल का संयोग अवश्य चला आ रहा है किन्तु वह भी जीव के लिये एक उपाधि है। जीव

जब होश में आकर ठीक मार्ग पर आ जाता है तब वह पुद्गल सम्बन्ध स्वयं दूर हो जाता है।

इस लिये संसार में इस जीव की निजी वस्तु कोई भी नहीं है। पुत्र, मित्र, स्त्री, धन, मकान आदि को जीव मोह वश भूल से अपनी समझता है क्योंकि ये सभी पदार्थ जीव से सदा भिन्न हैं जीव जब किसी शरीर में आता है तब उसके साथ धन मकान आदि सांसारिक चीजें नहीं आतीं और न अन्य शरीर पाने के लिये परलोक यात्रा करते समय ही ये पदार्थ जीव के साथ जाते हैं।

इतना ही नहीं किन्तु यह शरीर भी जो कि रात दिन इसके साथ रहता है वह भी परलोक यात्रा के समय जीव का साथ छोड़ देता है। शरीर यहां पड़ा हुआ खाक में मिल जाता है और जीव कहीं का कहीं जा पहुंचता है। इस लिये यह बात निश्चित होती है कि आत्मा से संसार की सब वस्तुऐं भिन्न हैं।

ऐसा विचार करना 'अन्यत्व भावना' है।

अशुचि भावना

— ६ —

हम अन्य पदार्थों को अपवित्र समझ कर नाक भौं सिकोड़ते हैं। हड्डी छू जावे तो हाथ पानी से धोते हैं, टट्टी देख कर मुख फेर लेते हैं, खून पीव मांस देखकर नाक बन्द कर लेते हैं, उनकी ओर देखना भी नहीं चाहते। परन्तु अपने शरीर की तरफ हमारी निगाह भी नहीं जाती। यह शरीर रज वीर्य सरीखी गन्दी चीज से उत्पन्न हुआ है, हड्डियों का एक ढांचा है, चमकीले चमड़े की चादर इस के ऊपर इस लिये चढ़ाई गई है कि इसकी गंदगी छिप जावे।

जिन चीजों से हम ग्लानि करते हैं वे लोहू, मांस पीव, चर्बी, हड्डी, टट्टी, पेशाब, वीर्य आदिक अपवित्र पदार्थ इस शरीर के भीतर भरे हुये हैं। जैसे पाखाने का घड़ा ऊपर से चाहे जितना धोया जावे कभी पवित्र नहीं हो सकता इसी तरह यह शरीर चाहे क्षीर समुद्र के समस्त जल से ही क्यों न धो दिया जावे पवित्र नहीं

हो सकता।

एक कहावत है कि—

"एक जगह पर टट्टी पड़ी हुई थी कि एक मनुष्य उसे उठाने लगा तो टट्टी बोली, खबरदार! मुझ से ये गन्दे हाथ न लगाना। उस मनुष्य ने कहा कि मेरे हाथ क्या तुझ से भी गन्दे हैं? टट्टी ने उत्तर दिया कि 'हां'। कल रात को मैं एक सुन्दर सुगन्धित दूध के रूप में थी तेरे जैसे ही एक मनुष्य ने रात को मुझे अपने पेट में कुछ देर ठहराया कि मेरी आज यह दशा हो गई है। अब फिर तू हाथ लगा रहा है मुझे डर है कि पता नहीं फिर मेरी क्या हालत होगी? आदमी सुनकर चुप रह गया।"

इस तरह शरीर की अपवित्रता का विचार करना 'अशुचि' भावना है।

आस्रव भावना

—o—

कार्माण वर्गणाऐं सारे जगत में भरी हुई हैं जहां पर मुक्त जीव विद्यमान हैं वहां भी अनन्त कार्माण स्कन्ध पाये जाते हैं किन्तु उनसे उन मुक्त जीवों का कुछ बिगाड़ नहीं होता। ये कार्माण वर्गणाऐं तब ही जीव को हानि पहुंचाती हैं जब कि यह जीव अपनी हरकतों से उन्हें अपनी ओर खींचता है।

ये हरकतें इसकी तीन तरह से होती हैं; मानसिक, वाचनिक और कायिक। मनमें जब जीव राग द्वेष आदि रूप कुछ विचारता है तब मानसिक हलचल होती है, जब वचन द्वारा सत्य असत्य आदि बोलता है तब वाचनिक चंचलता होती है और जब शरीर कोई हलचल करता है तब शारीरिक हलन चलन होती है। आत्मा शरीर में तिल में तेल की तरह सर्व व्यापक है अतः उक्त तीनों में से किसी भी हलचल के समय आत्मा में भी हलचल होती है इसी हलचल के कारण वे कार्माण

स्कन्ध इस आत्माकी ओर खिंच आते हैं। इसी खिंचावट का नाम 'आस्रव' है।

यह आस्रव जीव को संसार में घुमाता है। अतः भ्रमण का कारण आस्रव है। जब तक इससे पीछा नहीं छूटता तब तक यह जीव सुखी नहीं हो सकता।

ऐसा विचार करना 'आस्रव भावना' है।

संवर भावना

—८—

यह जीव कर्म की खेती स्वयं बोता है राग द्वेष के बीज डालकर मन वचन काय योगों का हल चलाता है इस तरह कर्म रूपी पौदा तयार होता है। बाद में उसके शुभ अशुभ फल चखकर फिर नई खेती तयार करता है। इस तरह यह अपने बन्धन के लिये स्वयं रस्सी बंटता है। अगर यह अपनी हरकत को एक दम उलट दे तो कर्म की खेती उगना बन्द हो जावे। इसी बन्दिश

का नाम 'संवर' है।

मिथ्यात्व, अविरत आदि भावों से कर्म-आस्रव होता है जीव अपने आपको संभाल कर जब अपनी परिणति बदल देता है तब सम्यक्त्व, व्रत, समिति, गुप्ति धर्म आदि भाव प्रगट होते हैं तब कर्म-आगमन के द्वार बन्द होते जाते हैं जिससे कि जीव नवीन कर्म भार से भारी नहीं होने पाता।

इस प्रकार संवर संसार में डूबते हुये जीव को नौका की तरह सहारा देता है इस लिये संवर आत्मा के लिये कल्याणकारक है।

इस तरह विचार करना 'संवर भावना' है।

निर्जरा भावना

—६—

जिन कर्म वर्गणाओं का जीव के साथ बन्ध हो जाता है वे वर्गणाएं सदा जीव से नहीं बन्धी रहतीं

क्योंकि यदि ऐसा होता तो अब तक संसार में एक भी परमाणु बाकी न बचता सब समाप्त हो गये होते। होता यह है कि जो कर्म जीव द्वारा बांधा जाता है वह अपनी स्थिति के समयों के अनुसार उतने भागों में बंट जाता है और कुछ समय बाद प्रत्येक समय एक एक हिस्सा उदय में आता जाता है यानी-जीव को अपनी प्रकृति (तासीर) के अनुसार फल देकर आत्मा से अलग होता रहता है। इस लिये जिस तरह प्रति समय कर्मबन्ध हुआ करता है। उसी तरह प्रति समय कर्म छूटता भी रहता है।

जीव का विरक्ति भाव यदि अधिक ऊंचा हो तो तपस्याकी अग्निमें जीव कर्म-ईन्धनको इस तरह जलाता है कि कर्म बिना कुछ जीव को हानि पहुंचाये आत्मा से दूर हो जाते हैं।

इस कर्म दूर होने की प्रक्रिया को निर्जरा कहते हैं। उक्त दोनों प्रक्रियाओं में तपस्या द्वारा निर्जरा होने की प्रक्रिया कल्याणकारिणी होती है। ऐसी

निर्जरा तपस्वी जनों के होती है। पहली निर्जरा से आत्मा का कुछ भला नहीं होता वह हर एक संसारी जीव के प्रति समय हुआ करती है।

ऐसा विचार करना 'निर्जरा भावना' है।

लोक भावना

—१०—

आकाश द्रव्य अनन्त है पाये जाने वाले जीव पुद्गलों से यदि अनन्त गुणे भी द्रव्य और हों तो भी आकाश में समा सकते हैं। उस आकाश के बीचों बीच लोकाकाश है। जो घन रूप ३४३ राजू है। लोकाकाश कमर पर दोनों हाथ रक्खे हुये पैर पसारे मनुष्य के आकार का है। चौदह राजू ऊंची, एक राजू लम्बी चौड़ी त्रसनाड़ी लोकाकाश के बीच में है। त्रस जीव इसी त्रसनाड़ी के भीतर रहते हैं। स्थावर जीव समस्त लोकाकाश में पाये जाते हैं।

लोकके तीन हिस्से हैं। १–अधोलोक, २- मध्य-लोक, ३–ऊर्ध्वलोक।

अधोलोक में सात नरक एक दूसरे के नीचे नीचे हैं उनमें पापी जीव जाकर दुख भोगते हैं।

जहां पर हम लोग रहते हैं यह मध्य लोक है जो कि सुमेरु पर्वत की ऊंचाई तक माना जाता है। मध्य लोक थाली की तरह गोल है। इसमें जम्बूद्वीप आदि असंख्यात द्वीप और लवणसमुद्र आदि असंख्यात समुद्र हैं। ढाई द्वीपों में मनुष्य रहते हैं। अन्तिम द्वीप का तथा समुद्र का नाम स्वयंभूरमण है।

सुमेरु पर्वतसे ऊपर ऊर्ध्व लोक है। इसमें सौधर्म ईशान आदि दो दो स्वर्गोंके ऊपर २ सोलह स्वर्ग हैं उन के ऊपर ९ ग्रैवेयक, नव अनुदिश और उसके ऊपर पांच अनुत्तर विमान हैं। उनके ऊपर पैंतालीस लाख योजन की सिद्ध शिला है। उससे भी ऊपर अन्तिम वातवलय में मुक्त जीव रहते हैं।

ऐसा विचार करना 'लोक भावना' है।

बोधि दुर्लभ भावना

—११—

इस संसार में संसारी जीवों के शरीर धारण करने के लिये ८४ लाख योनियां है। नित्य निगोद वाले भी जीव हैं जो कि एक श्वास में १८ बार जन्म मरण करते हैं। उन जीवों के किसी शुभ कर्म का उदय आवे तो पृथ्वीकाय आदि स्थावर शरीर उन्हें प्राप्त हो, एकेन्द्रिय से विकलत्रय होना बहुत कठिन है, विकलत्रय से पंचेन्द्रिय शरीर मिलना दुर्लभ है। इन सब कठिनाइयों को पार कर लेवे तो भी मनुष्य पर्याय पाना बहुत मुश्किल है। यदि मनुष्य भी हुआ तो म्लेच्छ, चांडाल, घसियारे, भील आदि के घर उत्पन्न हुआ तो मनुष्य भव पाकर भी जन्म पशुओं की तरह बिताना पड़ता है।

इस तरह सम्पूर्ण अंगोपांग, सम्पूर्ण इन्द्रियों सहित नीरोग शरीर, दीर्घायु, उच्च कुल का मिलना उत्तरोत्तर कठिन है। यदि इन कठिनाइयों को भी पास करले तो

जैनधर्म का योग मिलना दुर्लभ है। जैनकुल में भी जन्म ग्रहण करले किन्तु जब तक धर्मसे प्रेम न हो तब तक जैन घर में उत्पन्न हो जाने से भी आत्मा का कुछ कल्याण नहीं हो सकता।

संसार में अच्छा सुयोग्य सुखी परिवार, धन सम्पत्ति, प्रभुता, ऐश्वर्य आदि सामग्री मिलना विशेष कठिन नहीं किन्तु यदि सबसे अधिक कठिन कोई चीज है तो वह आत्मा का सच्चा कल्याणकारी आत्म-अनुभव है। यदि आत्म-अनुभव (सम्यग्दर्शन सम्ग्ज्ञान) न हो पावे तो संसार का समस्त ऐश्वर्य भी आत्मा की अशान्ति, तृष्णा, आकुलता को नहीं मिटा सकता।

ऐसा विचार करना 'बोधिदुर्लभ' भावना है।

धर्म भावना

—१२—

पदार्थ के स्वभाव का नाम 'धर्म' है। अग्नि का स्वभाव गर्म है, पानी का स्वभाव ठण्डा है। अतः

अग्नि का धर्म गर्मी और पानी का धर्म ठण्डक है। इसी तरह आत्मा स्वभाव क्षमा, मार्दव, सत्य, संयम, ब्रह्मचर्य आदि रूप है इस कारण आत्मा के धर्म क्षमा मार्दव आदि माने गये हैं। इन क्षमा मार्दव आदि भावों के कारण ही आत्मा का उत्थान होता है, आत्मा उच्च पद प्राप्त करता है इस कारण भी (धरत्युत्तमे सुखे या इष्टस्थाने धत्ते इति धर्मः) क्षमा मार्दव आदि धर्म हैं।

आत्मा में अशान्ति की आग उत्पन्न करने वाली ये क्रोध, मान, माया, लोभ, राग द्वेष आदि कषायें हैं इन कषायों का दमन या नाश हुये बिना आत्मा में सुख शान्ति, निराकुलता नहीं उत्पन्न हो सकती अतः कषायों के दमन, शमन, क्षपण होने से जो क्षमा, धैर्य, सत्य, शौच आदि ज्योतियां आत्मा में जागृत होती हैं। उन ही से आत्मा को चैन मिलता है।

भूल से मोही जीव विषय भोगों में सुख की खोज करता है किन्तु विषय भोग तो आत्मा की अशान्ति के

बढ़ाने के कारण हैं। चक्रवर्ती पद पा कर नवनिधि, चौदह रत्नों का स्वामी हो कर भी, इन्द्रासन पाकर भी ससार में अब तक कोई सन्तुष्ट, सुखी न हुआ तो साधारण विषय भोगों से आत्मा की व्याकुलता क्या मिट सकती है।

पुरातन समय में भरत, सनत्कुमार, वज्रदन्त आदि चक्रवर्ती तथा रामचन्द्र, चन्द्रगुप्त आदि प्रतापी राजा महाराजाओं ने विशाल राज्य सम्पत्ति को ठुकरा कर, नग्न दिगम्बर साधु होकर पर्वत, गुफा, निर्जन वनखण्डों में अटल तपस्या की। ये सब बातें बतलाती हैं कि सुख का अटूट स्रोत और अक्षय भण्डार आत्मा में भरा हुआ है। बाहरी दौड़ धूप को छोड़ कर जब निश्चिन्त होकर आत्मा की खोज की जाती है तभी वह स्रोत खुलता है और तब ही आत्मवैभव हाथ आता है।

अहिंसा, परिग्रह त्याग आदि व्रत, मनोगुप्ति, समिति आदि परिकर उसी आत्म-खोज का साधन है इस लिये इन साधनों को भी धर्म कहा गया है। धर्मपथ का

अवलम्बन बिना किये आत्मा को सुख शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

इस प्रकार विचार करना 'धर्म भावना' है।

इस प्रकार जाप, ध्यान वा पाठ आदि सामायिक का समस्त कार्य समाप्त होने पर, खड़ा हो उसी पूर्व दिशा की ओर मुख करके नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ कर साष्टांग नमस्कार करके अपनी सामायिक क्रिया को समाप्त करे। यही तीन काल सामायिक करने की विधि है। सामायिक प्रतिमा का धारी ठीक समय पर ठीक २ या ४ या ६ घड़ी की सामायिक करे, दो घड़ी से कम समय न लगावे ज्यादा समय चाहे तो छह घड़ी का लगावे। दूसरी प्रतिमा में शिक्षाव्रत के सामायिक में तो अभ्यास था वहां की गल्तियां क्षम्य हैं किन्तु इस सामायिक प्रतिमा में तो बिलकुल शुद्ध, निरतिचार तथा ३२ दोष रहित निर्मल सामायिक होती है।

सामायिक के ३२ दोष

निम्न प्रकार हैं सो टाले--

१-अनादर से सामायिक करे

२-गर्व से सामायिक करे ।

३-मान बड़ाई के लिये सामायिक करे ।

४-पर जीवों को दुःख देते हुये सामायिक करे ।

५-हिलता हुआ सामायिक करे ।

६-शरीर को टेढ़ा रख कर सामायिक करे ।

७-कछुवे की तरह शरीर को सङ्कोच कर सामायिक करे ।

८-सामायिक में नीचा ऊंचा मछली की नांई होवे ।

९-मनमें दुष्टता रखे ।

१०-जिनधर्म के विरुद्ध सामायिक करे ।

११-भययुक्त सामायिक करे ।

१२-ग्लानि सहित सामायिक करे ।

१३-मनमें ऋद्धि-गौरव रखता हुआ सामायिक करे।

१४-जाति, कुल का गर्व रखता हुआ सामायिक करे।

१५-चोर की तरह छिपता हुआ सामायिक करे।

१६-सामायिक का समय टाल कर आगे पीछे सामायिक करे।

१७-दुष्टता युक्त सामायिक करे।

१८-दूसरे को भय उपजाता हुआ सामायिक करे।

१९-सामायिक के समय सावद्य वचन बोले।

२०-पर की निन्दा करे।

२१-भौंह चढ़ाय सामायिक करे।

२२-मनमें सङ्कोचता हुआ सामायिक करे।

२३-इधर उधर देखता हुआ सामायिक करे।

२४-बिना शोधे स्थान पर सामायिक को बैठे।

२५-जैसे तैसे सामायिक का काल पूरा करे।

२६–सामायिक सम्बन्धी सामान चटाई आदि के अभाव, सद्भाव में नागा करे।

२७–वांछा–युक्त सामायिक करे।

२८–सामायिक का पाठ कम करे।

२९–खण्डित पाठ पढ़े।

३०–गूंगे की नांई बोले।

३१–मेंढक की तरह ऊचे स्वर से पढ़े।

३२–चित्त चलायमान करे।

इन बत्तीस दोषों को हटा कर सामायिक करना चाहिये।

'समय' का अर्थ 'आत्मा' है। जिसके द्वारा शुद्ध आत्मा की प्राप्ति हो उसे 'सामायिक' कहते हैं। अतः आत्म कल्याण के जितने साधन हैं सामायिक का स्थान सबसे ऊचा है। सामायिक ही प्रमाद रहित क्रिया है। धर्मध्यान शुक्लध्यान सामायिक के ही उत्तम रूप हैं। सारांश यह है कि सामायिक से कर्मों का सम्वर और बहुत भारी निर्जरा होती है। कर्म–

बेड़ी इस सामायिक से ही कटती है।

इस प्रकार सामायिक का स्वरूप कहा इस प्रतिमा के पालने वालों का कर्तव्य है कि अपना व्यवहार, व्यापार, देशाटन आदि ऐसा न करें जिससे सामायिक में कोई बाधा हो।

॥ इति तृतीय प्रतिमा समाप्त ॥

चौथी

प्रोषधोपवास प्रतिमा

चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा का

—स्वरूप—

दूसरी व्रत प्रतिमा के प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत में तो शिक्षा (अभ्यास) रूप में प्रोषधोपवास का रूप था। वहां तो उत्तम, मध्यम, जघन्य रूप में भेद रूप भी था किन्तु यह प्रोषधोपवास प्रतिमा है, इसमें सोलह प्रहर का उत्तम प्रोषधोपवास ही होना चाहिये।

अर्थात्—महीने की दो अष्टमी व दो चतुर्दशी का प्रोषधोपवास करना सो चौथी प्रतिमा का धारण करना कहाता है। इस प्रतिमा वालों को सप्तमी और तेरस को एकाशन करके अष्टमी व चौदश का अनशन करना चाहिये।

पश्चात् नवमी को व अमावस्या या पूर्णिमा को पूरे

सोलह पहर (४८ घण्टे) होने पर एकाशन करना चाहिये। इस १६ पहर में प्रोषधोपवास करने वाले का कर्तव्य है कि किसी संसारी कार्य में अपना चित्त न लगावे चैत्यालयादि में रहकर धर्म साधन के सिवाय और कुछ न करे। निरतिचार उपवास करे, कषाय भावों को मन्द करे।

आजन्म अष्टमी, चतुर्दशी के दिन उपवास करने का उपर्युक्त प्रकार से नियम लेना तथा उसकी पूर्ण रक्षा करना, तभी प्रतिमा की सार्थकता है। इस प्रो-षधोपवास का प्रयोजन इन्द्रिय और मन को वश करके आत्महित की ओर ध्यान आकर्षित करना है। अतएव भव्य वृन्द इसे अवश्य धारण करें। यह ध्यान रहे आगे आगे की प्रतिमाओं को धारण करते हुये पिछली प्रतिमाओं का पालन करना आवश्यक है तभी प्रतिमा धारण करना सच्चा है।

पांचवीं

सचित्त-त्याग प्रतिमा

सचित्त त्याग प्रतिमा का स्वरूप

सचित्त हरी वनस्पति या छना हुआ भी अप्रासुक जल आदि ग्रहण न करना सो सचित्त-त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी श्रावक बड़ा दयालु भाव वाला होता है। जल को गरम करके या लवंग आदि पदार्थों से प्रासुक करके मर्यादा के भीतर ही पीना या हर एक काम में लेना चाहिये। इस प्रतिमाका धारी एक बून्द भी अप्रासुक पानी अपने खर्च में नहीं लेता। तथा हरी वनस्पतियों को जो कि निम्न लिखित रीति से प्रासुक हुई हों तो लेता है—

प्रासुक (अचित्त) करने की विधि—

सुक्कं पक्कं तत्तं-आमळळवणेहिं मिस्सियं दव्वं
जं जंतेण य छिण्णंतं सव्वं फासुयं भणियं ॥१॥

अर्थात—सूखा हुआ, अग्नि या धूप द्वारा पका हुआ, गरम किया हुआ, खटाई या नमक आदि मिला हुआ, यन्त्र द्वारा छिन्न-भिन्न, अर्थात टुकड़े टुकड़े हुआ,

पिसा हुआ, दला हुआ, रगड़ा या बांटा हुआ, निचोड़ा हुआ; ये सब आचार्यों द्वारा प्रासुक कहे गये हैं।

कच्चे गेहूं, चना आदि अन्न जब तक दले, पिसे न हों तब तक सचित्त हैं क्योंकि योनिभूत हैं अर्थात उनमें निमित्त मिलने पर जीव उत्पन्न अवश्य होंगे। इसी प्रकार सर्वत्र विवेक पूर्वक दयायुक्त वर्ताव करना सो पांचवीं प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी खाने के सचित्त पदार्थों को तो अचित्त करके ले सकता है। किन्तु और सचित्त वस्तुयें जैसे गीली मिट्टी आदि भी अपने हाथ पैर आदि धोने के काम में न लेवे। यहां पर सचित्त का त्याग खाने तथा ऊपरी स्थूल व्यवहार में है। छूने तक का त्याग तो मुनि पद में है। फिर भी यह दयामूर्ति सचित्त त्याग प्रतिमा का धारी सचित्त पदार्थों से बहुत बचता है। इसका सब काम बड़े यत्नाचार से सावधानी पूर्वक होता है। गमनागमन भी ईर्या समिति के साथ करने लगता है जिससे स्थूल त्रसों की रक्षा हो। इत्यादि इस प्रतिमा धारी के कर्तव्य हैं।

छठी

रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा

छठवीं रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा का

—स्वरूप—

इस प्रतिमा के अनेक नाम हैं। फिर भी उक्त नाम प्रसिद्ध है। कोई २ इस प्रतिमा को दिवा-मैथुन त्याग के नाम से इस लिये कहते हैं कि आगे सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा होने से, इस प्रतिमा से ही दिनमें मैथुन त्याग रूप ब्रह्मचर्य का कुछ कुछ अभ्यास किया जावे। तथा तीसरा नाम श्रीमत्परमपूज्य गुरुवर्य तारण तरण मण्डलाचार्य महाराज ने इस प्रतिमा का 'अनुराग-भक्ति' अर्थात—आत्मा में अत्यन्त प्रेम व भक्ति क्योंकि आगे ७ वीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा में निश्चय से समस्त स्त्री मात्र का त्याग होने पर भी अपने ब्रह्म (आत्मा) में चर्या करनी होगी इस अपेक्षा 'अनुराग-भक्ति' नाम भी

मान्य है, हमारी सम्मति में हर एक आचार्यों की अपेक्षाएं मान्य हैं। अब हम रात्रि भोजनत्याग अपेक्षा अनुसार ही इस प्रतिमा का स्वरूप कहते हैं क्योंकि पहले कहे गये दो नामों की अपेक्षा यह व्यवहारोपयोगी है। अतएव रात्रिभोजन त्याग से यहां मन, वचन, काय; कृत, कारित, अनुमोदन पूर्वक लेना चाहिये अर्थात इस प्रतिमा का धारी उक्त रीति से रात्रि भोजन का त्याग करता है। वैसे तो अष्ट मूल गुण में ही रात्रि-भोजन त्याग है किन्तु वहां सिर्फ अपने लिये खाने मात्र का त्याग है। कृत, कारित, अनुमोदना, या मन, वचन, काय से अन्य के लिये प्रबन्धादि कर देने का त्याग नहीं है। यहां इस प्रतिमा में तो अन्य अपने पुत्रादि कुटुम्ब के लिये भी प्रबन्ध व अनुमोदना तक का त्याग होता है इस लिये पहली प्रतिमा के रात्रि भोजन त्याग में व इस छठवीं प्रतिमा के रात्रिभोजन त्याग में भेद है। इस रात्रिभोजन त्याग प्रतिमा का चारित्र उज्वल है, प्रशंसनीय है। इस प्रतिमा का धारी हिंसा

होने व ईर्या समिति न पल सकने के कारण रात्रि में गमनागमन का भी संसारी कार्यों के लिये त्याग करता है। यदि धार्मिक कार्य आवश्यक हो तो विवेक पूर्वक गमन आदि करता है।

इस प्रकार ये संसार शरीर तथा भोगों से उदासीन छह प्रतिमा के धारी जीव जघन्य श्रावक कहलाते हैं। अब आगे सातवीं प्रतिमा से नवमी प्रतिमा तक मध्यम श्रावकका स्वरूप है। आगे दशमी तथा ग्यारहवीं प्रतिमा के धारी पूज्य उत्कृष्ट श्रावक होते हैं।

यद्यपि उक्त छह प्रतिमाओं के पालन कर्ता सज्जन घर में रहते हुये भी उदासीन हैं किन्तु यदि कोई इन छह प्रतिमाओं में या दूसरी को पालते ही उदासीन हो कर घर का त्याग कर दे और प्रतिमाओं का पालन या अभ्यास करे तो उसके अर्थात सातवीं प्रतिमा जिस व्यक्ति ने नहीं ली है और जघन्य श्रावक रहकर ही जिस ने गृहत्याग कर दिया हो जैसे कि अक्सर आजकल हो रहा है तो उन गृहत्यागी उदासीनों के क्या कर्तव्य

हैं, सो हम यहां संक्षेप से लिखे देते हैं। जिसे पढ़कर गृहत्यागी उदासीन श्रावक पालन करें। यदि वे इन नियमों के अनुसार न चलेंगे तो स्वेच्छाचार होगा, धर्म की हीनता होगी, अतएव इन नियमों को अवश्य पालें। यदि हमारे लिखने में त्रुटि हो तो शास्त्रों से ठीक कर लें, परन्तु स्वेच्छाचारी न बनें, क्योंकि स्वेच्छाचार से सिवाय धर्म की हानि व दुर्गति के बन्ध के और अन्य कुछ भी लाभ नहीं होता, अतएव जिनेन्द्र शासन की प्रत्येक आज्ञा जिनवाणी अनुसार ही पालना धर्मात्मा जीवों का कर्तव्य है।
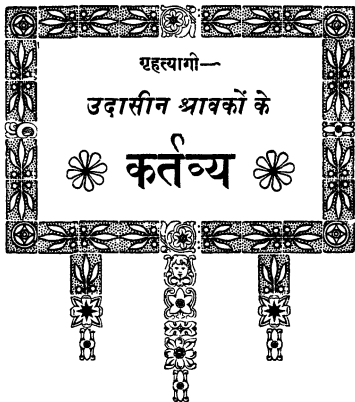
गृहत्यागी—
उदासीन श्रावकों के
कर्तव्य

गृह-त्यागी उदासीन श्रावकों के

-कर्तव्य-

१--अपने त्यागे हुये गृह, व्यापार तथा कुटुम्बी जनों से गृह त्यागने के पश्चात फिर किसी प्रकार का ममत्व सम्बन्ध न रखे।

२-उदासीन आश्रम, मुनिसंघ या किसी व्रती के आश्रय रहते हुये जीवन व्यतीत करे। स्वतन्त्र न रहे क्योंकि स्वतन्त्र रहने से चारित्र निर्मल नहीं रह सकता यह पंचम काल है।

३-ग्यारह प्रतिमाओं में से पहिली दूसरी या जितनी आगे की पालन हो सकें अवश्य पालना चाहिये किन्तु पहली और दूसरी का पालन तो अवश्य ही होना चाहिये आगे की प्रतिमाओं का चाहे अभ्यास हो।

४-औकीनी, पतले वस्त्र तथा अन्य सामान अपने

पास ऐसा कोई न रखे जो उदासीनता के विरुद्ध हो अपने पास रखने योग्य कुल परिग्रह का प्रमाण कर लेवे जितने में निर्वाह हो सके।

५-वैराग्य-सूचक पोशाक धारण करे जो इस प्रकार है—

१-मस्तक पर कपड़ा (फेटा) अवश्य बांधे।

२-बाला बन्डी इकहरी या दुहरी पहिने।

३-चादरा ओढ़ने का न खूब बारीक हो न खूब मोटा हो।

४-पंचा ५ या ७ हाथ का पहने उसके नीचे लङ्गोट अवश्य हो तथा पंचा ऐसा न पहने जिससे पूरे नीचे तक पैर ढके रहें किन्तु घुटनों तक पैर खुले रहना चाहिये।

५-जूते पहनने का या तो त्याग करे या कपड़े के पहने चमड़े या रबड़ के फैशनेबुल जूते बिलकुल न पहने।

६-छतरी यदि रखे तो सफेद कपड़े की हो शौकीनी

न हो।

७ अपने पास का कोई भी कपड़ा, पोशाक रङ्गीन या गेरू आदि में रङ्गकर काममें न लावे अपना बाना सफेद रखे।

६-अपनी कोई भी क्रिया अव्रती के अनुसार न रखे कुल क्रियायें व्रती श्रावक ही की हों और फिर आप तो उदासीन है बहुत यत्नाचार पूर्वक बर्ताव करे।

७-सामायिक आदि के लिये चटाई रख सकता है किन्तु चटाई पर सोना नहीं अपने प्रमाणित शुद्ध वस्त्रों पर शयन हो।

८-भोजन के वास्ते कोई श्रावक आदर-पूर्वक निमन्त्रण करे तो जावे अन्यथा शुद्ध भोजन का योग मिले तो ठीक है नहीं तो अपने हाथ से बना लेवे इसके लिये यथायोग्य बर्तन सामान अपने पास रख सकता है।

९-रुपया पैसा आदि भी अपने पास प्रमाण पूर्वक आवश्यकतानुसार रखे।

१०-अपने से बड़े व्रतियों से नम्रता विनय पूर्वक

बर्ताव करे व यथायोग्य वैयावृत्य करे।

११-अपना समय ध्यान, अध्ययन, पढ़ना, लिखना आदि धार्मिक कार्यों में व्यतीत करे संसारी मनुष्यों के सम्पर्क में व्यर्थ समय न गमावे।

नोट—उक्त ११ नियम ६ वीं प्रतिमा या ६ वीं के भीतर कोई प्रतिमा धारण किये गृहत्यागी उदासीन श्रावकों के हैं छठवीं प्रतिमा के बाद सातवीं से पक्का ब्रह्मचारी हो जाता है यद्यपि छठवीं तक का उदासीन श्रावक भी ब्रह्मचारी है तथापि उसके बाह्य चिन्ह सप्तम प्रतिमा से ही ब्रह्मचारी के हो सकते हैं पहले नहीं। यह उदासीन श्रावक अपने नित्य शौचादिक के लिये कमण्डलु जैसा पीतल का या किसी भी धातु का लोटा रख सकता है क्योंकि इसमें सुभीता रहता है क्योंकि उसमें छोटा ग्लास रह सकता है। तथा गमन समय सुभीता होता है। लघुशङ्का जाकर जलसे इन्द्रिय शौच अवश्य करना तथा दीर्घ शङ्का जाने पर मृत्तिकादिक से शौच करना।

शेष नियम व्रती श्रावक के हों।

सातवीं-ब्रह्मचर्य प्रतिमा

सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा का

—स्वरूप—

पहले कही हुई छह प्रतिमाओं का अभ्यास करके या पूर्ण पालन करके जिसका चित्त अत्यन्त निर्मल हो गया है ऐसा तथा अपनी निज आत्मा में रमण करने का है लोभ जिसको ऐसा भव्य श्रावक, विषय भोगों को अपने ब्रह्म की चर्या में बाधक समझ अब समस्त स्त्री मात्र का पूर्ण मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से त्याग करके ब्रह्मचारी हो कर अपने वीर्य-बल को आत्म विकाश के सदुपयोग में लगाता हुआ, उत्तरोत्तर अपने भावों को शुद्ध करता हुआ, कर्मों के संवर तथा निर्जरा करने में तत्पर होता है। और निम्नलिखित कर्तव्यों को पालन करता है—

सर्व प्रथम शील की 'नवबाड़' ध्यान में रखना चाहिये जैसे बाड़ी लगा देने से या खेत के आसपास तार लगा देने (या रून्ध देने) से ही खेत की रक्षा होती है उसी प्रकार शील की 'नवबाड़' हैं इनसे ब्रह्मचर्य की पूर्ण रक्षा होती है।

शील के नव बाड़ों के नाम—

१-स्त्रियों के सहवास में न रहना।

२-स्त्रियों को राग रुचि से न देखना।

३-स्त्रियों से रागवर्धक वार्तालाप नहीं करना।

४-पूर्व में भोगे विषयों को याद नहीं करना।

५-गरिष्ठ आहार नहीं करना।

६- शरीर को शृङ्गार करके सुन्दर न बनाना।

७-स्त्रियों के शय्या, आसन आदि पर नहीं सोना, बैठना।

८-कामकथा या विकथा नहीं करना।

९-भरपेट भोजन नहीं करना।

इस प्रकार ये शील की नवबाड़ जिनेन्द्र देव ने कही

हैं। तथा और भी ब्रह्मचारी के कर्तव्य आगे लिखते हैं। इनपर पूर्ण ध्यान देना चाहिये।

विशेष बातें

१–स्त्रियों के मेले में भूल कर भी न जावे, न उनका गायन आदि सुने।

२–स्त्रियों के समागम में नहीं रहे।

३–स्त्रियों के मनोहर अङ्ग न देखे।

४–रागभाव पूर्वक वार्तालाप स्त्रियों से बिलकुल न करे।

५–पूर्व में भोगे विषयों की याद न करे।

६–कामोद्दीपक, गरिष्ठ तथा भरपेट भोजन न करके एक बार भोजन करना। जल पान दुबारा कर सकते हैं।

७–शौक से स्नान न करे, मामूली शरीर स्वच्छ रखे।

८-शौक से दर्पण न देखे।

९-शरीर-शृङ्गार न करे।

१०-राग उत्पन्न करने वाले रङ्गीन वस्त्र, आभरण आदि न पहने।

११-शौक से कपड़े के जूते व छतरी भी न लगावे, यदि इनको धारण करे तो उदासीनता पूर्वक मात्र शरीर रक्षा के भाव से।

१२-शौक से सुगन्धित तेल इत्र आदि का लगाने, व सूंघने का त्याग करे।

१३-गृहवासी ब्रह्मचारी हो तो मूछें न बनवावे बाकी सब हजामत छुरे से क्षौर करावे, गृह-त्यागी मूछें भी नहीं रखे। चोटी दोनों ब्रह्मचारियों को रखनी चाहिये।

१४-स्त्रियों के शय्यासन पर न बैठे।

१५-स्त्रियों के नाच गायन न देखे।

१६-स्त्री कथा बिलकुल न करे।

१७-मनमें काम विकार चेष्टा न रखे।

१८--वचनों से कामकथा न करे।

१६--काय से खोटी चेष्टा न करे।

२०-किसी की, किसी से हंसी दिल्लगी आदि बिलकुल न करे।

२१--शृङ्गार, काव्य, नाटक, उपन्यास आदि खोटी पुस्तकें न पढ़े, न सुने।

२२- पलङ्ग या कोमल बिस्तर आदि पर न सोवे।

२३--आराम-कुर्सी, गद्दे तकिये या और राग-वर्धक आसनों पर न बैठे

२४--अपने बिस्तर पर आप अकेला ही सोवे।

२५--ताम्बूल आदि न खावे।

२६--अल्प आरम्भ रखे वह भी उदासीनता पूर्वक।

२७--स्त्री पर्याय की सवारी हथिनी, घोड़ी, ऊंटनी आदि पर न बैठे।

२८--अपने वस्त्र आदि अपने हाथ से धो लेवे या कोई विवेकी पुरुष से धुलावे, स्त्रियों से न धुलावे।

२९-किसी के पाखाने पर पाखाना या पेशाब पर पेशाब न करे, बड़ी हिंसा होती है।

३०-दान्तौन आदि न करे सामान्य शुद्धि से दांत साफ कर ले।

३१-दान्तों को व भावों को मलिन करने वाली कोई चीज मिस्सी वगैरह व आंखों में अञ्जन वगैरह न लगावे।

इन उपर्युक्त समस्त नियमों को शील की नवबाड़ सहित गृहत्यागी व गृहवासी समस्त ब्रह्मचारी गण पालन करें।

गृहवासी ब्रह्मचारी का कर्तव्य-नियम

उपरोक्त नवबाड़ सहित ब्रह्मचर्य के समस्त नियमों को पालन करता हुआ घर में रहते हुये अपनी प्रवृत्ति निम्न प्रकार रखे—

१-न्याय, नीति पूर्वक सत्य व्यवहार सहित अपनी आजीविका तथा कुटुम्ब पालन करे विशेष आरम्भयुक्त व हिंसक व्यापार न करे।

२–अपना रहन सहन व्यवहार आदि क्रियायें उदासीनतापूर्ण वैराग्यसूचक रखे।

३–अपने व पराये पुत्र पुत्रियों के विवाह सम्बन्ध आदि कार्यों के रागवर्धक नेग दस्तूर आदि में बिलकुल शामिल न हो।

४–घर में रहते हुये भी पहली प्रतिमा से दूसरी, तीसरी, चौथी प्रतिमा आदि के समस्त नियम जो कि पहले लिखे जा चुके हैं उनका विवेक पूर्वक पालन करता हुआ अपनी ब्रह्मचर्य प्रतिमा रूप कर्तव्य को निर्मल रखने में बहुत सावधान रहे।

गृहत्यागी ब्रह्मचारी के कर्तव्य

१–अपनी पोशाक सफेद रखे व शुद्ध वस्त्र (खादी आदि) ही उपयोग में लावे। व अपने पास रखने का जितना भी परिग्रह सामान हो उसकी संख्या व प्रमाण कर लेवे।

२–पहनने का पञ्चा ५ या ६ हाथ का रखे उसके

नीचे लङ्गोट सफेद रखे। तथा ओढ़ने के एक पाट के चादर रखे। अण्डी आदि सिले वस्त्र उपयोग में लेवे।

३ यदि गृहत्यागी ब्रह्मचारी की सहन शक्ति योग्य है तो वह मात्र कोपीन पहन कर चादर ओढ़े और कोई वस्त्र शरीर पर न रखे तो भी युक्त है। किन्तु एक कोमल वस्त्र जीवों की रक्षार्थ पूञ्जणी रूप में अपने हाथ में हमेशह रखे। और जीवरक्षा का ध्यान रखे।

४–अपना शिर किसी वस्त्रादि से न ढके, हमेशा खुला रखे।

५–ओढ़ने बिछाने मे रूई भरे तथा ऊन आदि के वस्त्र व रङ्गीन वस्त्र काम में न लावे।

६–अपने पास आवश्यकतानुसार मौका पड़ने पर रसोई आदि बना सकने योग्य सामान सामग्री रख सकता है।

७–यदि कोई श्रावक एक दिन पहले या प्रातःकाल

भोजन का निमन्त्रण करे तो सहर्ष जावे और उसके पूछने पर अपनी त्याग आखडी बता देवे। थाल में भोजन करे।

८--शौचादिक के लिये पीतल का बिना टोंटी का कमण्डलु जिसमें छोटा ग्लास हो अपने पास रखे।

९ -आठवीं आदि अगली प्रतिमाओं का अभ्यास करते हुये अपने समय का सदुपयोग धार्मिक कार्य व परोपकार आदि कार्यों में ही करे।

१०--आषाढ़ की अष्टान्हिका से कार्तिक की अष्टा--न्हिका तक एक स्थान में रह कर वर्षाकाल (चातुर्मास) बितावे।

आठवीं

आरम्भ-त्याग प्रतिमा

आठवीं आरम्भत्याग प्रतिमा का

—स्वरूप—

सातवीं प्रतिमा का धारी गृहत्यागी या गृहवासी ब्रह्मचारी आरम्भत्यागी न होने से अपने २ पद के अनुसार आरम्भ कर सकता था। किन्तु आठवीं प्रतिमा का धारी गृहवासी या गृहत्यागी श्रावक समस्त प्रकार के आरम्भ का त्यागी होता है।

अर्थात—षट्काय के जीवों की जिसमें विराधना या हिंसा होवे ऐसा काम बिलकुल नहीं करता इसके लिये आरम्भ-त्यागी को निम्न कर्तव्य ध्यान में रखने योग्य हैं।

१–किसी भी प्रकार का व्यापार धन्धा आदि आजीविका सम्बन्धी उद्योग, आरम्भ त्यागी बिलकुल न करे। न दूसरों को प्रेरणा करे।

२–मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से

आरम्भ का त्याग करे अर्थात् किसी के आरम्भ जनित कार्य की अनुमोदना या प्रशंसा भी न करे। जैसे आपने अच्छा मकान या मंदिर बनवाया आदि। और जिस गमन आगमन आदि में आरंभ हो वह दूसरों से भी न करावे।

३-यद्यपि आरम्भत्यागी गृहवासी है तो भी अपने पुत्र पुत्रियों के, आप स्वयं सगाई, विवाह आदि का आरंभ न करे, यदि कुटुम्ब के लोग करें और सम्मति मांगें तो उदासीनता-पूर्वक हानि लाभ की सलाह दे देवे क्योंकि अभी अनुमति का त्याग नहीं किया है। किन्तु अनुमति भी ऐसी न देवे जिससे अपनी सम्मति से ही कोई आरंभ हो।

४-इस प्रतिमा का धारी यद्यपि परिग्रह का पूर्ण त्यागी नहीं है, अतएव अपने पास द्रव्य रख सकता है, परन्तु उस द्रव्य से कोई आरम्भ कार्य नहीं कराता, किन्तु धर्म कार्य व अपने निर्वाह में ही सदुपयोग करता है। परिग्रह भी अल्प रखे, अधिक परिग्रह भी आरंभ का कारण है।

५-आरम्भ-त्यागी अपने हाथ से रसोई नहीं बनावे,

झाड़ना, बुहारना, कंडील, दीपक आदि जलाना, पानी भरना, स्नान करना, पंखा झलना, रात्रि में गमनागमन, आदि समस्त आरम्भ के काम छोड़े।

६–अपने या दूसरे के यहां निमन्त्रण द्वारा भोजन को जावे, अपनी आखड़ी नियम बता देवे किन्तु आप कोई चीज बनाने को न कहे।

७ जूता न पहने, छतरी न लगावे, किसी भी प्रकार की जीवधारी सवारी पर न चढ़े। और प्रत्येक क्रिया दिन रात सम्बन्धी विवेक-पूर्वक करे, अर्थात् बैठना, उठना, गमन, शयन, कोई वस्तु उठाना धरना आदि यत्नाचार-पूर्वक करे। हाथ में सदा कोमल वस्त्र जीव रक्षार्थ अवश्य रखे।

८–चातुर्मास में एक स्थान पर ही रहकर धर्म साधन करे। अपना समय ध्यानाध्ययन आदि धर्म कर्म में ही बितावे।

९–अजीव धारी सवारी पर (वह भी अनिवार्य कारण से) चढ़ सकते हैं जैसे नाव से नदी के उस पार जाना आवश्यक है। मोटर की सवारी का यथा-शक्य त्याग करना ही उत्तम है। और रेल में भी

यदि चलने का अनिवार्य कारण होवे तो भी विवेक पूर्वक गमन करे। अपनी सामायिक आदि आवश्यक क्रियाओं की हानि न होवे, ऐसा खूब विचार लेवे। और पैदल चले तो भी इतना परिग्रह न रखे जिसके लिये गाड़ी घोड़े की जरूरत पड़ जावे। आप न बैठे यदि आपका सामान जीव-धारियों पर लदा, या आपके लिये अजीव सवारी का स्पेशल प्रबन्ध हुआ तो भी आरम्भ-त्यागी को पूर्ण-आरम्भ जनित पापास्रव होगा ही। अतएव विवेक से समस्त कार्य करे। प्रमाद-रहित-पने पर तथा कषायों की मन्दता पर पूर्णध्यान रखे। अपने चिदानन्द चैतन्य की निज विभूति में ही निरन्तर मग्न रहे॥

नौवीं

परिग्रहत्याग प्रतिमा

नवमी-परिग्रहत्याग प्रतिमा का

—स्वरूप—

चौदह प्रकार के अन्तरङ्ग परिग्रह का मन्द भावोंसे, बाह्य परिग्रहों में सिर्फ वस्त्र व आवश्यक कमण्डल आदि पात्र रखकर शेष समस्त संसारी बाह्य परिग्रह का त्याग करना नवमी प्रतिमा है।

—अन्तरंग चौदह परिग्रह—

१–मिथ्यात्व २–वेद ३–राग ४–द्वेष ५–क्रोध ६–मान ७–माया ८–लोभ ९–हास्य १०–रति ११–अरति १२–शोक १३–भय १४–ग्लानि।

ये चौदह अन्तरङ्ग परिग्रह हैं, पहले इनको छोड़े इनकी मन्दता बिना बाह्य परिग्रह छोड़ना, न छोड़ने के समान है।

बहिरंग परिग्रह

(१० भेद)

१-क्षेत्र (खेत) बाग, बगीचा, आदि, २-वास्तु-घर महल, किला, हवेली, बङ्गला आदि। ३-हिरण्य-चांदी के रुपया जेवर बर्तन आदि। ४-सुवर्ण-मोहर गिन्नी जेवर आदि। ५-धन-गाय भैंस आदि पशु। ६-धान्य-चावल गेहू आदि गल्ला (अनाज) ७-दासी-नौकरनी टहलनी। ८-दास- नौकर चाकर। ९-कुप्य-कपास रेशम सन आदि के वस्त्र। १०-भांड-सर्व प्रकार बर्तन (पात्र) यह दश बाह्य परिग्रह हैं।

परिग्रहत्यागी के कर्त्तव्य

१-छोटे पना की छह हाथ लम्बी धोती पहिने, (नीचे लंगोट) एक चादर ओढ़ने को। तथा यदि गृह-वासी है तो १ फैंटा रूप शिर में बांधने को कपड़ा रखे, एक कोमल वस्त्र जीव रक्षार्थ हाथ में रखे, सोने को चटाई (बिस्तर न रखे) व आवश्यक जलपात्र (कमंडल)

रखे। इतना परिग्रह रखे अर्थात् छह २ हाथ की दो धोती दो चादर, दो लङ्गोट, एक फैटा, (गृहवासी हो तो) एक कोमल वस्त्र, एक चटाई इस प्रकार गृहवासी हो तो ६ चीजें व गृहत्यागी हो तो फैटा छोड़ कर आठ चीजें रखे व कमंडल रखे चाहे गृहवासी या गृहत्यागी हो। धर्म के उपकरण शास्त्रादि परिग्रह में नहीं हैं इस लिये नहीं लिखा।

२–जो गृहत्यागी हो तो कुटुम्ब सम्बन्धी सूआ सूतक नहीं मानना। गृहवासी हो तो अवश्य माने।

३-रागवर्धक घर आदि स्थानों में न रह कर चैत्यालय आदि में रहे तथा कोई भी श्रावक निमन्त्रण देकर भोजन को बुलावे तो जावे। नौकर चाकर आदि न रखे।

४-पहले की प्रतिमाओं के नियम ध्यान में रखते हुये यह प्रतिमा निर्मल भावों से पाले तथा अपने शुद्ध चिद्रूप का भेद-विज्ञान पूर्वक अनुभव करे क्योंकि निजानन्द को पाने के लिये ही यह सब परिग्रहादि का

त्याग किया जाता है। अतएव उस अपने स्वरूप की याद को बिलकुल न भूले क्योंकि निज स्वरूप को भूल जाने का ही तो यह फल है जो अभी तक संसार में भ्रमण करना पड़ रहा है। अब सावधान होकर अपना वास्तविक कर्तव्य विचारे। तथा इस परिग्रह-त्याग प्रतिमा धारी का कर्तव्य है कि अपनी प्रत्येक क्रिया अन्तरंग भाव से पालन करे क्योंकि अभी तक तो परिग्रह की कुछ चिन्ता थी, अब इस प्रतिमा से वह चिन्ता भी दूर हुई; बिलकुल निश्चिंत हुआ आत्म-कल्याण ही करे। इस प्रकार यहां तक सातवीं आठवीं और यह नवमी प्रतिमा वाले मध्यम श्रावक का कथन किया आगे उत्कृष्ट श्रावक दशमी तथा ग्यारहवीं प्रतिमा धारी का कथन करेंगे।

दशमी
अनुमतित्याग प्रतिमा

दशमी-अनुमतित्याग प्रतिमा का
—स्वरूप—

नवमी प्रतिमा के समान अपना बाह्य भेष रखता हुआ इस दशमी प्रतिमा में किसी को भी किसी प्रकार की भी अनुमति न देवे। अनुमति का अर्थ यहां पर संसार सम्बन्धी सलाह किसी को नहीं देना ऐसा समझना। धर्मोपदेशादि जीव के कल्याणमार्ग की अनुमति देने का निषेध नहीं है। अर्थात् उपदेशादि देवे तथा भोजन का समय होने पर कोई श्रावक कमण्डल उठाकर ले जावे तो उसके पीछे मौन से जाकर शान्ति पूर्वक निरन्तराय भोजन करे। दशमी प्रतिमा से

निमन्त्रण आदि बन्द हो जाता है। तथा नियम आखड़ी नहीं बताना अपने नियमानुसार जो प्राप्त हो रस नीरस वही भोजन कर लेना चाहिये और भाषा समिति का ध्यान रख कर प्रत्येक वचन बोले। यदि गृहवासी है तो नगर के एकान्त स्थान चैत्यालयादि में रहे, गृह-त्यागी हो तो गुरु समीप या बनादि में रहे। इस प्रतिमा में गृहत्याग ही है। नाम मात्र का गृहवासी है। यह संसार मे उदास ग्याहवीं प्रतिमा को ग्रहण कर पूर्ण श्रावक बनेगा।

ग्यारहवीं

उद्दिष्टत्याग प्रतिमा

ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का

—स्वरूप—

जो गृहवासी अनुमतित्यागी दशमी प्रतिमा का धारी श्रावक गृहत्यागी हो कर अपने निमित्त का बना हुआ भोजन व अन्य कोई, भी सामान ग्रहण नहीं करता, वही उद्दिष्टत्यागी उत्कृष्ट श्रावक कहा जाता है, वही ग्यारहवीं प्रतिमा वाला हो जाता है। यह श्रावक समस्त संसार से मोह छोड़ कर मुनिसंघ आदि के साथ विहार करता हुआ अपना वास्तविक कल्याण करता है तथा जिसप्रकार मुनिराज अनुद्दिष्ट आहारों की प्राप्ति के लिये चर्या को निकलते हैं उसी प्रकार इस प्रतिमा के धारी क्षुल्लक, ऐलक भी चर्या को निकलते हैं।

इस कारण से हम इस प्रतिमा के धारियों के दो भेदों

का पृथक् पृथक् निरूपण करेंगे। इस प्रकार के दो भेद हैं, पहला क्षुल्लक, दूसरा ऐलक। इन का निम्न लिखित प्रकार स्वरूप जानना।

क्षुल्लक

यह उत्कृष्ट श्रावक निम्न लिखित कर्तव्यों पर ध्यान देवे:—

१-क्षुल्लक अपने पास निम्न लिखित सामान रखे:—

(१) एक कमण्डल टोंटी वाला काष्ठ या पीतल का।

(२) मयूर के एक हजार आठ पूरे चंदेवा के पंखों की एक पीछी।

(३) खण्ड वस्त्र (एक पाट के, बिना सिले चादर) अपने हाथ से चार हाथ के वास्ते ओढ़ने के दो रखे किन्तु एक साथ दोनों को न ओढे

(४) कोपीन दो रखे, एक को बदले तब एक को दूसरे सिवाय चादर के साथ रखे। इस प्रकार एक कमंडल, एक पीछी, दो खंडवस्त्र तथा दो कोपीन, इतना सामान अपने पास रख सकता

है। व शास्त्रादि आवश्यक है ही।

२–केशलोंच करे या चौर करावे। क्षुल्लक की इच्छा पर है।

३–हाथ में या कटोरी-पात्र में आहार लेवे क्षुल्लक की इच्छा पर है।

४–रात्रि को मौन रहे चाहे न रहे जैसा अभ्यास व आवश्यकता हो वैसा करे।

५–रात्रि में दिगम्बर अवस्था में रहे चाहे चादर कोपीन सहित रहे क्षुल्लक की इच्छा पर है।

६–आहार चर्या के समय कठिन व्रत-परिसंख्या न करे क्योंकि क्षुल्लक श्रावक है। अष्टमी चतुर्दशी का प्रोषधोपवास अवश्य करे।

७–आतापन योग, वीरासनादि कठिन आसनें, व अपने आप कठिन परिषह वा उपसर्ग के सन्मुख आप न जावे। यदि परिषह उपसर्ग अकस्मात आवे तो सहन करे।

८–सिद्धान्त रहस्य जैसे अंगपूर्वादि के पाठ व रहस्य

आदि जानने के अधिकारी क्षुल्लक ऐलक नहीं हैं ऐसा आगम में कहा है।

९-क्षुल्लक को जितना सामान ऊपर बता आये हैं उतना ही रखना योग्य है उस के सिवाय चटाई घड़ी आदि सामान कुछ भी नहीं रखना चाहिये। काष्ठ पाषाण के तख्त आदि पर शयन करे चटाई पर न सोवे। बैठने का नियम नहीं। तथा अपने साथ विशेष आडम्बर न रखे।

१०-छयालीस दोष, बत्तीस अन्तराय आदि का ज्ञान, शास्त्रों से आहारादि विधि की चर्या-सम्बन्धी क्रियायें अच्छी तरह जान लेवे।

११-मुनिपद की क्रियाओं का अभ्यास करे। स्नान त्यागे, मुख-प्रक्षालन (दन्तधावन) का जैसा अभ्यास हो। आहार एक ही समय लेवे, तथा समस्त प्रतिमाओं का पूर्ण पालन करे।

१२-बीमारी आदि के समय यदि श्रावक गण चटाई या धान्य का पियार आदि बिछा देवें तो उस पर

सो सकता है। शेष समस्त क्रियाएं अपने विवेक से विचार पूर्वक करने हुये आत्म कल्याण करे।

❀—ऐलक ❀

ऐलक की समस्त क्रियाएं उद्दिष्ट त्याग की, चुल्लक के समान हैं विशेष नियम इस प्रकार जानना।

१—कमण्डल काष्ठ का ही हो, पीछी चुल्लक के समान। सिर्फ दो कोपीन मात्र इतना ही परिग्रह रखे शेष कुछ नहीं। शास्त्र आदि को नियमानुसार रखे ही।

२—केशलोंच अवश्य करे।

३—पाणिपात्र में बैठ कर ही आहार करे।

४—रात्रि में दिगम्बर मुद्रा सहित मौन युक्त रहे।

५—दन्तधावन स्नानादिक त्याग करे।

६—केशलुंच उत्तम दो माह, मध्यम ३ माह, जघन्य चार माह का होता है। इससे अधिक के लिये शास्त्राज्ञा नहीं है।

७–ऐलक शब्द का 'आर्य' ऐसा भावार्थ होता है अतएव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही ऐलक हों शूद्र नहीं, स्पर्श शूद्र यदि चाहें तो क्षुल्लक हो सकते हैं किन्तु-शूद्र क्षुलक लोहे का कमंडल रखे अन्य धातु या काष्ठ का नहीं रखे तथा भोजन के लिये अपना पात्र अपने पास रखे और भोजन करने पर अपने हाथ से मांज लेवे ऐसी शूद्र (स्पर्श) क्षुल्लक के लिये शास्त्राज्ञा है और श्रावक गण उसे चौके के बाहर ही आहार देवें। बाकी विधि पूर्ववत है।

८–पहले की समस्त प्रतिमाओं का भली भांति पालन करे।

९–और भी समस्त क्रियाओं को चारित्र ग्रन्थों के अनुसार जान कर बर्ताव करे। इस प्रतिमा का धारी एक देश महाव्रती (अतिथि) है। विशेष बारीक भेद शास्त्रों से जानना हमने तो स्थूल नियम नित्य काम में आने योग्य का ही वर्णन किया है॥

१०–यह ऐलक भी त्रिकालयोग (वर्षा, ग्रीष्म, शीत में) व आतापन योग आदि के, कठिन परिषह उपसर्गादि के सन्मुख न जावे। आये हुये परिषहों को सहे।

११–दिन में दिगम्बर न हो अर्थात् रात्रि में ही प्रतिमा-योग धारण करे।

१२–जिसकी शक्ति हो संहनन हो, योग्यता हो वही इस ग्यारहवीं प्रतिमा को धारण करे ॥

इस प्रकार ग्यारहवीं प्रतिमा का संक्षिप्त स्वरूप कहा, विशेष अन्य ग्रन्थों से जानना। ये ग्यारहों प्रतिमा-धारी जघन्य, मध्यम, उत्तम श्रावक अपने नियम पालने में बड़े चतुर, विवेकी, प्रमादरहित होते हैं, अतएव इस ग्रन्थ में रही कमी को भी वे अन्य ग्रन्थों से पूरी कर लेंगे ऐसी हमें पूर्ण आशा है।

इति

प्रतिमा प्रकरण समाप्त

—o—

फुटकर-प्रकरण

❀-षट्कर्म-❀

पूर्वोक्त प्रतिमाओं के धारी श्रावक गण अपने योग्य प्रतिमाओं का पालन तो अवश्य करेंगे ही किन्तु सभी प्रतिमा वाले श्रावकों का यह मुख्य कर्तव्य है कि वे अपने अपने षट्कर्मों का पालन अवश्य करें तभी श्रावक पद की शोभा है।

षट्कर्म इस प्रकार हैं:—

१–भावपूजा। २–गुरु-भक्ति। ३-स्वाध्याय।

४–संयम। ५–तप।

६–चार दान देना।

इस प्रकार इन षट् कर्मों को रोज रोज अपने अमल में लाना श्रावक का कर्तव्य है। इन छह कर्तव्यों के अर्थ व नियम सब समझते हैं व सरल भी हैं अतएव हम यहां पर ग्रन्थ बढ़ने के संकोच से इन षट्कर्मों के विषय में विशेष कुछ भी नहीं लिखते, न लिखने की आवश्यकता ही है। फिर भी किन्हीं श्रावक सज्जन महाशयों को इन के जानने की विशेष अभिलाषा हो तो

श्री गुरु तारण-तरण मंडलाचार्य महाराज के श्रावकाचार आदि ग्रन्थों को देख कर जानने की कृपा करें। अब आगे श्रावकों के योग्य कुछ और आवश्यकीय विषय हैं उनके विषय में कुछ लिख कर आगे ग्रन्थ को अन्त मंगल पूर्वक समाप्त करेंगे।

अभिवंदन प्रकरण

अव्रती, व्रती, ब्रह्मचारी, उत्तम श्रावक तथा निर्ग्रन्थ गुरु आदि की, एक दूसरे से अभिवंदन करने की पद्धति–

१–गुरु (मुनि) के लिये श्रावक 'नमोस्तु' कहे।

२–गुरु (मुनि) बदले में उत्तम त्रिवर्ण श्रावकों को 'धर्मवृद्धि', साधारण (सामान्य) पुरुषों को धर्मलाभ और शूद्रों को 'पापं क्षयतु' कहें।

३-गृहस्थ श्रावक क्षुल्लक ऐलक के प्रति नमोस्तु करें और वे उसके उत्तर में धर्मवृद्धि करें व अन्यों को भी यथाविधि आशीर्वाद देवे।

४–ब्रह्मचारी को श्रावक 'बन्दना' कहे।

५–ब्रह्मचारी बदले में श्रावक को 'पुण्यवृद्धि' अथवा 'दर्शनविशुद्धि' करे।

६–श्रावक आर्यिका को 'वंदामि' कहे।

७–आर्यिका भी श्रावक को 'धर्मवृद्धि' और सामान्य पुरुषों को 'धर्मलाभ' कहे।

८ व्रती श्रावक अर्थात् सहधर्मी आपस में 'इच्छाकार' करें विरक्त (उदासीन) श्रावक से भी इच्छाकार करें।

९–शेष जैनीमात्र आपस में अपने लौकिक व्यवहार में 'नमस्कार' करें।

१०–इन के सिवाय और पुरुषों के प्रति भी उनकी योग्यतानुसार योग्य विनय करना चाहिये।

११–विद्या, तप और गुणों करके श्रेष्ठ पुरुष, अवस्था में कम होते हुए भी ज्येष्ठ (बड़ा) माना जाता है॥

१२–ग्यारहवीं प्रतिमा वाले आपस में 'इच्छामि' करें।

सूतकप्रकरण

प्रगट रहे कि सूतक में देव, गुरु, शास्त्र, मन्दिर के वस्त्र पात्र का स्पर्शन तथा पात्रदान वर्जित है। सूतक-काल पूर्ण होने पर पवित्र होवे सूतक का विधान इस प्रकार है:—

१-वृद्धि अर्थात् जन्म का सूतक १० दिन का माना जाता है।

२-स्त्री का गर्भ जितने माह का पतन होय, उतने दिन का सूतक मानना चाहिये, यदि तीन मास से कम का हो, तो ३ दिन का सूतक मानना चाहिये।

३-प्रसूती-स्त्री को ४५ दिन का सूतक होता है, इस के पश्चात् वह स्नान दर्शन करके पवित्र होवे।

४-प्रसूति स्थान को १ माह का सूतक अर्थात् अशुद्धता होती है।

५-रजस्वला (ऋतुवती) स्त्री की पांचवें दिन शुद्धता होती है॥

६-व्यभिचारिणी स्त्री कभी भी शुद्ध नहीं होती उसके सदा ही सूतक है।

७-मृत्यु का सूतक १२ दिन का माना जाता है।

८-तीन पीढ़ी तक १२ दिन, चौथी पीढ़ी में १० दिन पांचवीं पीढ़ी में ६ दिन, छठी पीढ़ी में ४ दिन, सातवीं पीढ़ी में ३ दिन, आठवीं पीढ़ी में १ दिन रात, नवमी पीढ़ी में २ प्रहर और दशवीं पीढ़ी में स्नान मात्र से शुद्धता कही है।

९--जन्म तथा मृत्यु का सूतक गोत्र के मनुष्य को ५ दिन का होता है।

१०--आठ वर्ष तक के बालक की मृत्यु का ३ दिन का और ३ दिन के बालक का १ दिन का सूतक जानो।

११--अपने कुल का कोई गृहत्यागी अर्थात् दीक्षित हुआ हो उसका सन्यासमरण अथवा किसी कुटुम्बी का संग्राम में मरण हो जाय, तो १ दिन का सूतक होता है यदि अपने कुल का देशान्तर में मरण

करे और १२ दिन पूरे होने के पहिले मालूम हो तो शेष दिनों तक सूतक मानना चाहिये यदि दिन पूरे हो गये हों तो स्नान मात्र सूतक जानो।

१२-घोड़ी, भैंस, गौ आदि पशु तथा दासी अपने आंगन (गृह) में जने तो १ दिन का सूतक होता है।

१३-दासी दास तथा पुत्री के प्रसूति होय या मरे तो ६ दिन का सूतक होता है। यदि गृह बाहिर होय तो सूतक नहीं होता यहाँ पर मृत्यु की मुख्यता से ३ दिन का कहा है। प्रसूति का १ ही दिन का जानो।

१४--अपने को अग्नि में जलाकर (सती होकर) मरे उस का ६ माह का तथा और और हत्याओं का यथायोग्य पातक जानना।

१५-जने पीछे भैंस का दूध १५ दिन तक, गाय का १० दिन तक अशुद्ध है। पश्चात् खाने योग्य है॥

नोट—प्रगट रहे कि कहीं २ देश भेद से सूतक विधान में भी भेद होता है इस लिये देश पद्धति तथा शास्त्रपद्धति का मिलान कर पालन करना चाहिये।

स्त्रियों का सम्यक्चारित्र

जो स्त्री दोनों कुलों से शुद्ध हो, जाति, धर्म शील कर मन्डित होते हुये स्त्रियोपयोगी लज्जादिक समस्त गुणों से युक्त, आत्मकल्याण की वांछा जिसके मन में हो वह भी ग्यारह प्रतिमाओं को यथाविधि पालन कर सकती है और क्षुल्लिका तथा अर्जिका के व्रत तक पालन कर सकती है। विशेष नियम इस प्रकार हैं:—

१—आर्यिका एक सफेद साड़ी, पीछी, कमण्डल, शास्त्र रखे। बैठकर पात्र में आहार करें, केशलोंच करे। बाकी विधि व गुण मुनिराजवत जानना।

२—अर्जिका आचार्यादि की वन्दना को जावे तो आचार्य को ५ हाथ दूरसे, उपाध्याय को ६ हाथ दूर से और साधु को ७ हाथ दूर से वन्दना करके

पिछाड़ी जाकर बैठे अगाड़ी न बैठे। इसी प्रकार आलोचना, स्तुति, अध्ययन आदि भी इतनी दूर से करना चाहिये। और जिस तरह गौ बैठती है उस तरह बैठकर वन्दना करे और दूसरी तरह वंदना न करे।

३-क्षुल्लिका एक सफेद धोती, (१६ हाथ) तथा एक सफेद दुपट्टा रखती है बाकी क्रियायें क्षुल्लकवत।

४-ब्रह्मचारिणी श्राविका मध्यम पात्र के मध्यम भेद में है।

इस प्रकार स्त्रियों को भी विवेक-विचार पूर्वक यथाशक्य सम्यक्चारित्र का पालन करना चाहिये।

❋—समाधिमरण—❋

जैसा कि पहले लिख आये हैं, समस्त श्रावकों को चाहिये कि अन्य श्रावकाचार ग्रन्थ तथा श्री 'भगवती आराधना सार' आदि ग्रन्थों से समाधि मरण का विस्तारपूर्वक स्वरूप जानकर समाधिमरण करने के लिये

सावधान रहें, समाधि मरण का पा लेना ही व्रतों की व प्रतिमा धारण करने की सार्थकता है।

त्यागियों का अग्नि संस्कार

उदासीन गृहत्यागी, और गृहत्यागी व गृहवासी ब्रह्मचारी से लेकर दशमी प्रतिमा तक का श्रावक तथा मुनिराज वा क्षुल्लक, ऐल्लक और स्त्रियां जो गृहत्यागिनी ब्रह्मचारिणी, क्षुल्लिका तथा अर्जिका आदि हों, उनका समाधिमरण हो जाने पर श्रावकों का कर्तव्य इस प्रकार है :—

१–मरण होने के बाद शीघ्र ही अग्नि संस्कार की तैयारी होना चाहिये देर न हो अन्यथा उस शरीर में उत्पन्न हुये संमूर्छन जीवों का घात होगा।

२–अग्नि संस्कार दिन में ही करना चाहिये। रात्रि में समाधिमरण हो तो लाचारी है किन्तु उसे दिन में ही संस्कारित करें।

३-उपर्युक्त कहे त्यागियों का समाधिमरण होने पर वहां उपस्थित समस्त श्रावकों व व्रतियों को चाहिये कि उपवास आदि यथाशक्ति नियम करके उस दिन को धर्म ध्यान में वितावें।

४-उपर्युक्त त्यागियों के अग्नि-संस्कार को बड़े विनय पूर्वक व प्रभावना सहित करना योग्य है जैसेः- विमान (लकड़ी आदि का) को सजा कर उस में उस देह को विराजमान करके बाजे गाजे से भजन-भाव पूर्वक किसी अच्छे स्थान बगीचा आदि में ले जावे और वहां की शुद्ध प्रासुक जमीन में चन्दन, कपूर, नारियल, घी तथा शुद्ध लकड़ो आदि से विमान समेत रखकर अग्नि संस्कार करे यदि मृतक देह क्षुल्लक ऐलक मुनि अर्जिका की हो तो उन के पीछी कमण्डल को विमान में कमण्डल की टोंटी आगे करके व पीछी का झब्बा आगे करके रख दें, उनको जलावे नहीं, पीछी कमंडल को उस दाह-स्थान पर अग्नि से कुछ दूर रखदें

तथा उनको वहीं पड़े रहने दें उठाकर न लावें, शायद उस पद का धारी क्षुल्लकादि मरण कर किसी भी देव पर्याय में गया हो तथा स्मरण करके उस स्थान पर कभी आ जावे जहां उन का अग्नि-संस्कार हुआ है तो सम्भव है पड़े हुये पीछी कमंडल को देख कर उसे सम्यग्दर्शन हो जावे। अतएव इस बात का पूरा ध्यान श्रावकों को रखना चाहिये। वास्तव में आत्मा के निकल जाने पर है तो सब असार ही किन्तु इतनी प्रभावना और करने से संसारी जीवों का मन धर्म की ओर खिंच जाता है। और कोई इस प्रभावना का विशेष मतलब नहीं है।

इस तरह श्रावकधर्म का यथाशक्य स्वरूप हमने अपनी मंद बुद्धि के अनुसार लिखा है। यद्यपि अनेक आचार्यों के छोटे बड़े ग्रन्थों को देख कर उनके मतभेदों को मथन करके यह तारण-तरण 'श्रावक स्वरूप' नाम का ग्रन्थ लिखा है, तथापि श्रीमत्परम पूज्य मण्डलाचार्य श्री गुरु

तारण तरण महाराज की आम्नाय (तारण पंथ) का तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का पूर्ण ध्यान रखते हुये यह ग्रन्थ लिखा है, आशा है श्रावकवृन्द हमारी बाल-बुद्धि जनित त्रुटियों पर ख्याल न कर के ग्रन्थ का सारभाग ग्रहण कर आत्म-कल्याण करने की ओर अपना लक्ष्य देंगे, जिससे परम्परा अभीष्ट की प्राप्ति होवे।

- इतिशम् -

'धर्मवृद्धिरस्तु' 'पुण्यवृद्धिरस्तु' 'मंगलमस्तु'

शुभं-भूयात्।

इति श्री 'तारण तरण श्रावक स्वरूप' ग्रन्थ 'क्षुल्लक जयसेन' द्वारा लिखित आज मिती भाद्रपद वदी सप्तमी मङ्गलवार विक्रम सं० १९९९ तारण सं० ४२४ को मध्यान्ह बाद लिख कर पूर्ण हुआ।

अन्तमंगल

व

समाप्ति - प्रकरण

मगलमय शुभ धर्म यह, भव्य जीव हितकार।
जयवन्तो वर्तो सदा, जैन धर्म सुखकार ॥
परमेष्ठी मंगल सदा, मंगल जिन वच सार।
मंगलमय मंगल महा-मंत्र नमो नवकार ॥
जिनवाणी मङ्गल करो, हरो दुखद अज्ञान।
तारण तरण समर्थ मुनि श्री गुरु देव महान ॥
मङ्गल-मय जिन-धर्म की कृपा जीव पै होय।
तो भव २ के दुःख यह जन्म मरण सब खोय ॥
भयो ग्रन्थ सम्पूर्ण यह श्रावक धर्म स्वरूप।
बारबार. बांचो सुनो, पावो सहज सरूप ॥

श्रीयुत मेंहगूलाल जी वासी नगर सिरौंज।
तिन आग्रह वश ग्रन्थ यह लिख्यो सुमन युत मौज॥
धन्य धन्य निंसई महा क्षेत्र निमित्त प्रसाद।
चातुर्मास निवास शुभ निराबाध अविषाद॥
निर्जन वन की शून्यता, सरितानिकट अपार।
प्रकृति महा सौन्दर्यता, मध्य क्षेत्र शुभद्वार॥
सब निमित्त कारण भले, भले २ संयोग।
धन्य २ शुभ उदय यह धन्य सभी शुभ योग॥
धर्म दिवाकर मंत्रिपद .भूषण कहे समाज।
श्रीगुलाबचन्द्रादि शुभ शान्तमूर्ति गुणसाज॥
त्यागमूर्ति शान्ती प्रकृति रतीचन्द गुणवान।
जिनके आग्रह वश भयो 'शब्द कोष' में ध्यान॥
और २ सज्जन सभी आये चातुर्मास।
सहयोगी बन धर्म के करी साधनाभ्यास॥
ग्राम 'कवासा' वास हर, किशन साव गम्भीर।
पूरे चातुर्मास में रहे धर्मयुत धीर॥
वयोवृद्ध जिज्ञासु श्री चुन्नीलाल सुरूप।

आये पन्नालाल जी बासोदा सुखरूप ॥
भाई कालूराम जी उदासीन परिणाम।
सदा निकट में ही रहैं, सरल शान्त गुणधाम॥
चिरञ्जीव बालक गुणी प्रेमचन्द्र होणार।
बीनावासी जो सदा धर्म प्रेम करणार॥
मुन्शी पूनाराम जी शीलव्रती शुभ भाव।
छिन्दवाड़ा वासी यहाँ आये धर्म सहाव॥
दानवीर श्रीमान शुभ मन्नूलाल सुवृद्ध।
आगासौद निवास सूं आये धर्म निबद्ध॥
श्रीयुत उत्साही बड़े रामलाल पांडेय।
'तारण-बन्धु' प्रकाशते आये हर्ष भरेय॥
इत्यादिक सज्जन यहां ग्रन्थ पूर्ण के पूर्व।
जो जो भी आये गुणी कहे नाम गुण भूर्व॥
ग्यारह प्रतिमा को कथन ग्रन्थमध्य विस्तार।
लिख्यो अल्प मतिमन्द यह देखौ सुधी सुधार॥
जिन वाणी वाणी सुखद अगम अथाह अपार।
भूलचूक सज्जन क्षमा करें भव्य गुणधार॥

निजपर हित कारण भयो ग्रन्थ धर्म विस्तार।
क्षुल्लक मति जयसेन यह विनवे बारम्बार॥

श्रावकधर्माभिलाषी—

क्षुल्लक-जयसेन

श्रीनिसई जी (मल्हारगढ़)

श्री शुभ मिती भादों वदी अष्टमी विक्रम सं० १९९६ तारीख ६-९-३९ ई० दिन बुधवार प्रातः काल में यह अन्तमङ्गल समाप्ति प्रकरण लिखकर समाप्त किया। जो धर्मप्रेमी भव्य वृन्द, इसे बांचें सुनें तिन्हें हमारी बारम्बार सराहना युक्त 'धर्मवृद्धि' स्वीकार हो॥

:—इति शुभमस्तु—:

श्री

तारण-तरण

श्रावक-स्वरूप

क्षुल्लक श्रावक जयसेन द्वारा लिखित

समाप्त हुआ।

* उज्वल-भविष्य *

पाठक वृन्द ! यह श्रावक स्वरूप नामक ग्रन्थ है जिस में कि पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक जयसेन जी महाराज ने आबाल वृद्ध सभी नर नारियों के ज्ञानार्थ पहली दर्शन प्रतिमा से लगा कर ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा अर्थात् क्षुल्लक ऐलक पद धारण करने तथा आर्यिका पद तक के सब हीं नियमों की यथा-क्रम निरतिचार सविवेक पालन करने की सम्पूर्ण विधियों का सविस्तार वर्णन किया है।

बन्धुओ! यह श्रावक स्वरूप ग्रन्थ जो कि पुस्तकाकार रूप में श्रीमान सेठ मुरलीधर मेंहगूलाल जी सिरौंज निवासी की ओर से आपके कर कमलों में भेंट स्वरूप दिया जा रहा है एक अपूर्व निधि है, क्योंकि इस श्रावक स्वरूप ग्रन्थ का संग्रह पूज्य श्री क्षुल्लक जी महाराज ने

बड़े ही परिश्रम के साथ अनेक आर्षग्रन्थों को अवलोकन करते हुये इस उमंग पूर्ण भावना से किया है कि मेरे परिश्रम किये हुये इस कार्य से अर्थात् इस श्रावक स्वरूप ग्रन्थ को पढ़ कर एक नहीं अनेक भव्य आत्माएँ अपने आत्म-कल्याण की इच्छा से यथा-क्रम प्रतिमाओं (प्रतिज्ञाओं) को धारण करती हुई अपना अपना कल्याण करने के साथ ही साथ दूसरे अनेक जीवों को कल्याण मार्ग पर लगाने में समर्थ होंगी।

अतएव ऐसी परम्परा प्रवृत्ति का बढ़ना ही समाज एवं धर्म के लिये उज्वल भविष्य का मुख्य कारण है क्योंकि नीतिकारों का वाक्य है कि जिस जाति में जीवनीशक्ति नहीं है, चारित्र बल नहीं है और धर्म ज्ञान नहीं उसके द्वारा जगत का कल्याण तो क्या अपना भी कभी कल्याण नहीं हो सक्ता है। अस्तु, यह एक ऐसी अपूर्व पुस्तक आपके हाथों में जा रही है कि जिसे पढ़ कर आप महानुभाव चारित्र पालन करने का परिपूर्ण ज्ञान यथाविधि कर सकेंगे, अभी तक क्या

दशा थी कि एक तो सर्व प्रथम गृह-जंजाल में फंसे हुये अपनी खोटी होनहार वश जीवों को धर्म अथवा चारित्र धारण करने की रुचि ही उत्पन्न नहीं होती थी परन्तु अब ऐसे कुछ सुयोग बन गये हैं और बन रहे हैं कि जिन निमित्तों को पाकर समाज के कई एक स्त्री पुरुषों के मन में यह भावनाएं जाग्रत होने लगी हैं कि कुछ धर्म अथवा चारित्र धारण करें, परन्तु यथाविधि क्रम पूर्वक प्रतिमाओं के स्वरूप को नहीं जानने के कारण से या तो वैसे ही मन मार कर रह जाना पड़ता था अथवा नीची ऊंची मन-मानी प्रतिज्ञाएं ले ली जाती थीं, परन्तु नहीं, नहीं इस ग्रन्थ को पढ़ लेने पर अब ऐसा न होगा समस्त समाज ग्यारहों प्रतिमा के स्वरूप को भली भांति जान लेगी, और जान कर यथा-शक्ति धारण करने को कटिबद्ध भी होगी।

मुमुक्षु बन्धुओ! किसी भी विषय को जान लेना तब ही सार्थक होता है जब कि यथा-शक्ति उसको धारण किया जाय, आप के हाथों में यह पुस्तक पहुंचने

पर आप का परम कर्तव्य होगा कि आप ग्यारह प्रतिमाओं के स्वरूप का ज्ञान भली भांति करके अपनी अपनी शक्ति अनुसार पहली दूसरी तीसरी इत्यादि किन्हीं प्रतिमाओं तक के पालन करने का नियम अवश्य लेकर अपनी आत्मा को कल्याण मार्ग पर लगावें और दूसरे सहयोगी जनों को भी उत्साहित करें, आपके ऐसा करने पर ही पूज्य श्री क्षुल्लक जी महाराज की आत्मा ही क्यों, परम-पूज्य प्रातःस्मरणीय श्री १०८ श्री गुरु तारण तरणाचार्य महाराज की भी आत्मा अत्यन्त संतोष को प्राप्त होगी कि हां अब समय ने हमारे चार सौ वर्ष पश्चात् पुनः जीवों के भावों में धर्म ज्योति का जागरण किया है कि जिस से यह संसारी प्राणी अपने कल्याण के मार्ग लग कर अपना और अपने साथियों का सच्चा वास्तविक हित करने में समर्थ होंगे।

प्रिय धर्मबन्धुओ! पूज्य श्री क्षुल्लक जी महाराज कि जिन्होंने इस ग्रन्थ के बनाने में इतना अधिक परिश्रम

किया तथा श्रीमान सेठ मुरलीधर मंहगूलाल मोतीलाल जी कि जिन्होंने इस पुस्तक को भेंट स्वरूप देने के लिये आग्रह पूर्वक पूज्य श्री क्षुल्लक जी महाराज से निर्माण कराय अपना शुभ द्रव्य खर्च किया है इन सब का एक मात्र तात्पर्य यही है कि हमारी समाज के सब ही भाई बहिन ग्यारह प्रतिमाओं के स्वरूप को जान कर यथा-शक्ति उनका पालन करें, अतएव ऐसा करना ही उन उपरोक्त आत्माओं को संतोषजनक होगा, क्योंकि वे चाहते यही हैं कि हमारे सब ही भाई बहिनें धर्मात्मा बनकर अपना २ कल्याण करें और साथ ही साथ सब के अथवा अधिकांश जनों के धर्मात्मा बन जाने से हो हमारी समाज की सच्ची शोभा होगी और फिर से एक बार श्री गुरु महाराज के किये उपदेश (अध्यात्म जैन धर्म) का डंका संसार में बज जायगा।

सज्जनो! यह ध्यान रहे कि जिस समाज में अधिकांश धर्मात्मा नर नारी होते हैं उस ही समाज तथा धर्म की सच्ची उन्नति संसार में हुआ करती है अत एव

पहले स्वयं धर्माचरण करके फिर आप दूसरों से प्रतिमाधारी बनने की प्रार्थना करो देखें आपकी प्रार्थना कौन स्वीकार नहीं करता अर्थात् यथा-शक्ति सब ही मानेंगे, बस इतना लिखकर अन्त में यह दो शब्द प्रार्थना रूप लिखता हूं कि आप इस पुस्तक को भली प्रकार ध्यान और विवेक पूर्वक आद्योपान्त अध्ययन करें तथा पुनः यह विचार करें कि मेरी शक्ति अथवा संयोग वर्तमान समय में सब कैसे बन रहे हैं कि जिन निमित्तों में रहता हुआ मैं कौन सी प्रतिमा का पालन कर सकता हूं अथवा अपनी उस शक्ति का भी विचार करें कि कैसे मैं समस्त गृहजंजाल से मुक्त होकर किसी भी प्रतिमा का पालन कर सकता हूं यथा-योग्य शक्ति प्रमाण, देश, काल, भाव के अनुसार अवश्य ही किसी प्रतिमा का धारक श्रावक बन जाना योग्य है, यों तो दशमी अनुमतित्याग प्रतिमा गृहवास करते हुये भी पालन हो सकती है परन्तु फिर भी अधिक साधन न हो सके तो दूसरी व्रत प्रतिमाका धारी श्रावक तो बन जाना

ही श्रेयस्कर (अच्छा) है क्योंकि यह मनुष्य पर्याय बार बार नहीं मिलती यदि आपने अव्रती रहकर इस अपनी अमूल्य पर्यायको यों ही गंवा दिया तो एक मात्र पछताना ही हाथ रह जायगा जब हम आगे दूसरी किसी नीच योनि में गिर जायेंगे वहां पर फिर इस बूंद से भेंट न होगी अतएव, सावधान ! सावधान !! सावधान !!!

प्रार्थी—शुभाकांची
मंत्री गुलाबचन्द
श्री निसई जी चेत्र (मल्हारगढ़)

स्वस्ति श्री १०५ क्षुल्लक जयसेन जी महाराज द्वारा संपादित ग्रन्थ व पुस्तकें

१–आचार मत—श्री तारण स्वामी विरचित श्रावकाचार का पद्यानुवाद (दोहों में)

२–विचार-मत—श्रीतारण स्वामी विरचित तीन बत्तीसी का पद्यानुवाद !

३–सार–मत—श्री तारण स्वामी विरचित उपदेश शुद्धसार की भाषाटीका-वचनिका।

४–तारण-शब्द कोष—श्री तारण स्वामी के विशाल साहित्य सूत्रों के चुने हुये शब्दों का अर्थ-मय तीन खंडों में कोष-ग्रन्थ।

५–तारण-तरण श्रावक-स्वरूप—श्रावक धर्म की ग्यारह प्रतिमाओं का स्पष्टीकरण सहित स्वरूप यह आपके हाथ में है ही।

६-अबल-बली, जिनेन्द्र-स्तवन—श्री तारण-स्वामी विरचित स्तोत्र, श्री अबल-बली का अर्थ-शब्दार्थ, भावार्थ सहित विवेचन व इसी में तत्व-मंगल का अर्थ है।

७-अष्ट मूल-गुण—यह श्री धर्म दिवाकर तारण समाज-भूषण मंत्री ब्र० श्री गुलाबचन्द्र जी ललितपुर की सुन्दर रचना स्वरूप पुस्तिका है।

८-तारणस्वामी-चरित्र— दोहा-चौपाई-सोरठा आदि में रचित-प्रकाशित हुआ, वितरण हो चुका है।

९-तारणझंडाभिवादन—(वितरण हो चुका है)

१०-तारण-तरण आरती-पद संग्रह।

११-तारणतरण-भजन माला—(प्रथम भाग) इसमें सोलह कारण, दश लक्षण सम्बन्धी व कुछ फुटकर भजन हैं।

१२-तारणतरण-भजन-माला—(द्वितीय-भाग) तैयार हो रहा है।

१३-तारणतरण-प्रतिष्ठा पाठ (तयार होगा) इस में मेला, चैत्यालय, वेदी प्रतिष्ठादि की विधि रहेगी।

१४-तारणतरण-भावपूजा—(छोटी पुस्तक बंट चुकी है)

इसके अतिरिक्त दर्शन पाठ, नित्यपाठ, सामायिक-पाठ तथा तारणतरण-ग्रन्थराजों की भाषा-टीका आदि तारण-पंथीय-साहित्य पूज्य चुल्लक महाराज द्वारा संपादन होकर क्रमशः प्रकाशित होगा।

❋—प्रार्थना—❋

(आरती की ध्वनि में)

जयदेव, जयदेव ?

जय श्री जिनवाणी माता।

जय जय जिनवाणी माता।

जय जिनवर जय मुनिवर जय श्री-

जिनवाणी ज्ञाता ।।टेक।।

जय जिन शासन जय सिंहासन-

जय श्री चरण शरण दाता ।।

भविजन गण शिव सुख पावें जो-

चरण शरण आता-जयदेव०।।१।।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरण-

जय मोक्षमार्ग गाथा ।।

सम्यक-वन्त जीव जयवन्तो-

भेद-ज्ञान पाता-जय० ।।२।।

यह जग अशरण रूप धन्य तुव-

शरण जीव आता ॥

तारण तरण विरद सुन भवदधि-

पार उतर जाता- जय०॥३॥

पाऊं निज गुण ज्योति-

आरती करूं सुगुण गाता।

क्षुल्लक 'जय' श्रावक को दीजै-

निजानन्द साता–जय०॥४॥

जयदेव, जयदेव ?

जय श्री जिनवाणी माता।

जय जय जिनवाणी माता।

जय जिनवर- जय मुनिवर जय-

श्री जिनवाणी ज्ञाता॥

कृपया—

प्रत्येक छपे हुए—

ग्रन्थ पुस्तक फार्म आदि

धार्मिक साहित्य को—

विनय पूर्वक सम्हाल

कर रखिये ॥

भविष्य में काम आवेगा

मनाइये—

श्रीतारण-जयन्ती और

श्रीतारण-समाधि दिवस

प्रति-वर्ष

मनाने का ध्यान रखिये।

—तथा—

मनुष्य मात्र को—

श्री गुरु के पवित्र—उपदेश उद्देश्य

सुनाइये!

२००) रु० पारितोषक

उस लेखकको मिलेगा जो प्राचीन ग्रंथोंसे
शिलालेखों से, तथा गवर्नमेंट के
पुराने रिकार्डोंसे रियासतों,
के पुराने रिकार्डोंसे

श्री गुरु—

तारणतरणाचार्य महाराज का

प्रामाणिक

जीवन-चरित्र पूरा पूरा :—

लिख कर तैयार करेगा।

इ के अतिरिक्त :—

उसका वह ग्रन्थ प्रकाशित भी कराया जावेगा।

निवेदक:—

(दानवीर) सिं० हीरालाल नोखेलाल जी

सिगोड़ी (छिन्दवाड़ा)